ब्रह्मचर्य

[संयम तथा ब्रह्मचर्य संबंधी विचार]

पहला भाग

मोहनदास करमचंद गांधी

१९५४

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

ब्रह्मचर्य

: १ :

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतोंमें तीसरा ब्रह्मचर्य-व्रत है। वास्तवमें देखा जाय तो दूसरे सभी व्रत एक सत्यके व्रतमेंसे ही उत्पन्न होते हैं और उसीके लिए उनका अस्तित्व है। जिस मनुष्यने सत्यको वरा है, उसीकी उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तुकी आराधना करे तो व्यभिचारी बन जाता है। फिर विकारकी आराधनाकी तो बात ही कहां उठ सकती है? जिसकी कुल प्रवृत्तियां सत्यके दर्शनके लिए हैं, वह संतानोत्पत्तिके काममें या घर-गिरस्ती चलानेके झगड़ेमें पड़ ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसीको सत्य प्राप्त होनेकी आज तक हमारे सामने एक भी मिसाल नहीं है।

अथवा अहिंसाके पालनको लें तो उसका पूरा पालन ब्रह्मचर्यके बिना असाध्य है। अहिंसा अर्थात् सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुषने एक स्त्रीको या स्त्रीने एक पुरुषको अपना प्रेम सौंप दिया वहां उसके पास दूसरेके लिए क्या बच रहा? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बादको।' पतिव्रता स्त्री पुरुषके लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्रीके लिए सर्वस्व होमनेको तैयार होगा। अतः यह स्पष्ट है कि उससे सर्वव्यापी प्रेमका पालन नहीं हो सकता। वह सारी सृष्टिको अपना कुटुम्ब नहीं बना सकता, क्योंकि उसके पास अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या तैयार हो रहा है। उसकी जितनी वृद्धि, उतना ही सर्वव्यापी प्रेममें विक्षेप होता है। इसके उदाहरण हम सारे संसारमें देख रहे हैं। इसलिए अहिंसा-

व्रतका पालन करनेवालेसे विवाह नहीं बन सकता; विवाहके बाहरके विकार-की तो बात ही क्या ?

फिर जो विवाह कर चुके हैं उनकी क्या गति होगी ? उन्हें सत्यकी प्राप्ति कभी न होगी ? वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकते ? हमने तो इसका रास्ता निकाल ही रखा है—विवाहितका अविवाहितकी भांति हो जाना। इस दिशामें इससे बढ़कर मैंने दूसरी बात नहीं देखी। इस स्थितिका मजा जिसने चखा है वह गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोगकी सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको भाई-बहन मानने लग जायं तो सारे झगड़ोंसे वे मुक्त हो जाते हैं। संसार-भरकी सारी स्त्रियां बहनें हैं, माताएं हैं, लड़कियां हैं—यह विचार ही मनुष्यको एकदम ऊंचे ले जानेवाला, बंधनमेंसे मुक्ति देनेवाला हो जाता है। इसमें पति-पत्नी कुछ खोते नहीं, वरन् अपनी पूंजीमें वृद्धि करते हैं, कुटुम्ब बढ़ाते हैं; विकार-रूपी मैल निकलनेसे प्रेम भी बढ़ता है। विकारोंके जानेसे एक-दूसरेकी सेवा अधिक अच्छी हो सकती है, एक-दूसरेके बीच कलहके अवसर कम होते हैं। जहां स्वार्थी एकांगी प्रेम है, वहां कलहके लिए ज्यादा गुंजाइश रहती है।

इस प्रधान विचारके समझ लेने और उसके हृदयमें बैठ जानेके बाद ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य-लाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलासके लिए वीर्य खोना और शरीरको निचोड़ना कितनी बड़ी मूर्खता है ? वीर्यका उपयोग दोनोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिको बढ़ानेके लिए है। उसका विषय-भोगमें उपयोग करना यह उसका अति दुरुपयोग है। इस दुरुपयोगके कारण वह बहुतेरे रोगोंकी जड़ बन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका पालन मन, वचन और कर्म तीनोंसे होना चाहिए। व्रत-मात्रके विषयमें यही बात समझनी चाहिए। हम गीतामें पढ़ते हैं कि जो शरीरको तो वशमें रखता हुआ जान पड़ता है; पर मनसे विकारका पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सबका यह अनुभव है कि मनको विकारी रहने देकर शरीरको दबानेकी कोशिश करनेमें हानि ही है। जहां

मन होता है वहां शरीर अंतमें बिगड़े बिना नहीं रहता। यहां एक भेद समझ लेना जरूरी है। मनको विकारवश होने देना एक बात है; मनका अपने-आप, अनिच्छासे, बलात्कारसे विकारको प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकारमें यदि हम सहायक न बनें तो अन्तमें जीत ही है। हमारा प्रतिपलका यह अनुभव है कि शरीर काबूमें रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीरको तो तुरन्त ही वशमें करके मनको वशमें करनेका हम सतत प्रयत्न करते रहें तो हमने अपना कर्तव्य पालन कर लिया। हमारे, मनके अधीन होते ही, शरीर और मनमें विरोध खड़ा हो जाता है, मिथ्याचारका आरम्भ हो जाता है। पर जहां तक मनोविकारको दबाते ही रहते हैं वहां तक दोनों साथ जानेवाले हैं, ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्यका पालन बहुत कठिन, करीब-करीब असम्भव माना गया है। इसके कारणकी खोज करनेसे मालूम होता है कि ब्रह्मचर्यको संकुचित अर्थमें लिया गया है। जननेंद्रिय-विकारके निरोध-भरको ही ब्रह्मचर्यका पालन मान लिया गया है। मेरे खयालमें यह व्याख्या अधूरी और गलत है। विषय-मात्रका निरोध ही ब्रह्मचर्य है। निस्संदेह, जो अन्य इंद्रियोंको जहां-तहां भटकने देकर एक ही इंद्रियको रोकनेका प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है। कानसे विकारी बातें सुनना, आंखसे विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तु देखना, जीभसे विकारोत्तेजक वस्तुका स्वाद लेना, हाथसे विकारोंको उभारनेवाली चीजको छूना, और फिर भी जननेंद्रियको रोकनेका इरादा रखना तो आगमें हाथ डालकर जलनेसे बचनेके प्रयत्नके समान है। इसलिए जननेंद्रियको रोकनेका निश्चय करनेवालेके लिए इंद्रिय-मात्रको, उनके विकारोंसे रोकनेका निश्चय होना ही चाहिए। पर मुझे हमेशा लगता रहा है कि ब्रह्मचर्यका संकुचित व्याख्यासे नुकसान हुआ है। मेरा तो यह निश्चित मत और अनुभव है कि यदि हम सब इंद्रियोंको एकसाथ वशमें करनेका अभ्यास डालें तो जननेंद्रियको वशमें रखनेका प्रयत्न तुरन्त सफल हो सकता है। इसमें मुख्य स्वादेंद्रिय है, और इसीलिए व्रतोंमें उसके संयमको हमने पृथक् स्थान दिया है। उसपर अगली बार विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्यके मूल अर्थको सब याद रखें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्मकी, सत्य-

की—शोधमें चर्या, अर्थात् तत्संबंधी आचार। इस मूल अर्थमेंसे सर्वेन्द्रिय-संयम-रूपी विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेंद्रिय-संयम-रूपी अधूरे अर्थको तो हमें भूल जाना चाहिए।

: २ :

सन्तति-निग्रह—१

मेरे एक साथीने, जो मेरे लेखोंको बड़े ध्यानके साथ पढ़ते रहते हैं, जब यह पढ़ा कि सन्तति-निग्रहके लिए सम्भवतः मैं उन दिनों सहवासकी बात स्वीकार कर लूंगा जिनमें कि गर्भ रहनेकी सम्भावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि कृत्रिम साधनोंसे संतति-निग्रह करनेकी बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियोंके ही लिए। लेकिन बहस बढ़ते-बढ़ते इतनी गहराईपर पहुंच गई जिसकी हम दोनोंमेंसे किसीने आशा न की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्रको कृत्रिम साधनोंसे संतति-निग्रह करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। उनसे मुझे मालूम हुआ कि यह मित्र स्मृतियोंके इस बन्धनको साधारण मनुष्योंके लिए अनुल्लंघनीय समझते हैं कि पति-पत्नीको भी तभी सहवास करना चाहिए, जबकि उन्हें सचमुच सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे था; लेकिन उसे इस रूपमें पहले कभी नहीं माना था, जिस रूपमें कि इस बातचीतके बाद मानने लगा हूं। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालोंसे, मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूं, जिसपर ज्यों-का-त्यों अमल नहीं हो सकता। इसलिए मैं समझता था कि सन्तानोत्पत्तिकी खास इच्छाके बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जबतक एक-दूसरेकी रजामन्दीसे सहवास करें तबतक वे वैवाहिक उद्देश्यकी पूर्ति करते हुए स्मृतियोंके आदेशका भंग नहीं करते, लेकिन जिस नये रूपमें अब मैं स्मृतियोंको जानने लगा हूं वह मेरे लिए मानो एक इल्हाम है। स्मृतियोंका जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेशका दृढ़ताके साथ पालन करें वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे

अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं, उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हूं जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नये रूपमें, अपनी काम-वासनाको तृप्त करना नहीं; बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका एक-मात्र उद्देश्य है। साधारण काम-पूर्ति तो, विवाहकी इस दृष्टिसे, भोग ही माना जायगा। जिस आनन्दको अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्दका प्रयोग कठोर तो मालूम होगा; लेकिन प्रचलित प्रथाकी बात मैं नहीं कर रहा हूं; बल्कि उस विवाह-विज्ञानको ले रहा हूं जिसे हिन्दू-ऋषियोंने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने ठीक ढंगसे न रखा हो या वह बिलकुल गलत ही हो; लेकिन मुझ-जैसे आदमीके लिए तो, जो स्मृतियोंकी कई बातोंको अनुभवके आधार-भूत मानता है, उनके अर्थको पूरी तरह स्वीकार किये बगैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ पुरानी बातोंको उनके पूरे अर्थोंमें ग्रहण करके प्रयोगमें लानेके अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाईका पता लगाया जा सके। फिर वह जांच कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यों न लगें।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे उपायोंसे सन्तति-निग्रह करना बड़ी भारी गलती है। अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हूं। श्रीमती मार्गरेट सेंगर और उनके अनुयायियोंके लिए मेरे मनमें बड़े आदरका भाव है। अपने उद्देश्यके लिए उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। यह भी मैं जानता हूं कि स्त्रियोंको अनचाहे बच्चोंकी सार-सम्हाल और परवरिश करनेके कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसके लिए उनके मनमें स्त्रियोंके प्रति बड़ी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मैं जानता हूं कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहका अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डॉक्टरोंने भी समर्थन किया है, जिनमें बहुतोंको तो मैं व्यक्तिगत रूपसे जानता और मानता भी हूं; लेकिन इस सम्बन्धमें मेरी जो मान्यता है उसे अगर मैं पाठकों या कृत्रिम सन्तति-निग्रहके महान् समर्थकोंसे छिपाऊं तो मैं अपने ईश्वरके प्रति, जोकि सत्यके अलावा और कुछ नहीं है, सच्चा

साबित नहीं होऊंगा, और अगर मैंने अपनी मान्यताको छिपाया तो मुझे निश्चित है कि अपनी गलतीको, अगर मेरी यह मान्यता गलत हो, मैं कभी नहीं जान सकूंगा। अलावा इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषोंकी खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूं जोकि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओंके बारेमें मेरे आदेश और मतको स्वीकार करते हैं।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस बातपर तो वे भी सहमत हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनोंका समर्थन करते हैं, और वे भी जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म-संयमसे सन्तति-निग्रह करनेमें जो कठिनाई होती है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता; लेकिन अगर मनुष्य-जातिको अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवा इसकी पूर्तिका कोई और उपाय ही नहीं है; क्योंकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रहकी बात सबने मंजूर कर ली तो मनुष्य-जातिका बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रहके समर्थक इसके विरुद्ध प्रायः जो दलीलें पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूं।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्ध-विश्वास कोई नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि कोई बात इसीलिए सत्य है; क्योंकि वह प्राचीन है। न मैं यह मानता हूं कि चूंकि वह प्राचीन है इसलिए उसे संदिग्ध समझा जाय। जीवनकी आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह समझकर यों ही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमें शक नहीं कि आत्म-संयमके द्वारा सन्तति-निग्रह है कठिन; लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने संजीदगीके साथ इसकी उपयोगितामें सन्देह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनोंकी बनिस्बत यह ऊंचे दर्जेका है।

मैं समझता हूं, जब हम [illegible] शास्त्रोंके आदेशको पूर्णतः स्वीकार कर लें, और उनको ही सबसे बड़े आनन्द-का साधन न मानें, तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियोंका काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पतीके द्वारा [illegible] सन्तानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, [illegible]

स्त्री-पुरुप दोनों सहवासकी नहीं वल्कि सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे, जो कि ऐसे सहवासका परिणाम होता है, प्रेरित हों। अतएव सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा-के वगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उसपर नियंत्रण लगाना चाहिए।

साधारण आदमियोंपर ऐसा नियंत्रण किया जा सकता है या नहीं; इसपर आगे विचार किया जायगा।

हरिजन सेवक,
१४ मार्च १९३६

प्रकाशकीय

'ब्रह्मचर्य' पुस्तकका यह चौथा संस्करण है। इसमें गांधीजीके ब्रह्मचर्य तथा संयम-विषयक लेखोंका संग्रह है। १९३५ तकके इस विषयके लेख 'अनीतिकी राह पर' नामक पुस्तकमें प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तकमें मुख्यतः १९३६से लेकर १९३८ तककी रचनाएं हैं। १९३५ तकके जो लेख 'अनीतिकी राह पर' पुस्तकमें आनेसे रह गये थे, वे भी इसमें सम्मिलित कर लिये गये हैं। शेष रचनाएँ 'ब्रह्मचर्य' (भाग २) में प्रकाशित होंगी।

इस प्रकार इन तीनों पुस्तकोंमें गांधीजीके ब्रह्मचर्य-विषयक लगभग सभी लेख आजायंगे। इन तीनों पुस्तकोंको मिलाकर 'आत्म-संयम' के नाम से 'गांधी-साहित्य' के नवें भागके रूपमें भी प्रकाशित किया जा रहा है।

विषय और सामग्रीकी दृष्टिसे ये पुस्तकें स्थायी महत्वकी हैं; और आज जब कि जन-संख्याके असाधारण गतिसे बढ़ जाने और आर्थिक दबाव-के कारण लोगोंका ध्यान संतति-निग्रहकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है, इन पुस्तकोंकी उपयोगिताके बारेमें दो मत हो नहीं सकते।

—मंत्री

विषय-सूची

परिशिष्ट

: ३ :

सन्तति-निग्रह—२

हमारे समाजकी आज ऐसी दशा है कि आत्म-संयमकी कोई प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। शुरूसे हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशामें होता है। माता-पिताकी मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि, जैसे भी हो, अपनी सन्तानका व्याह कर दें जिससे चूहोंकी तरह वे बच्चे जनते रहें और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्रमें हो सके, बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका व्याह कर दिया जाता है। विवाहकी रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूल-खर्चीकी एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवारका जीवन भी वैसा ही होता है जैसा कि पहलेसे होता आया है, यानी भोगकी ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियां और त्यौहार भी इस तरह रखे गये हैं, जिनसे वैषयिक रहन-सहनकी ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरहसे गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौरपर विषयोन्मुख मनुष्योंको उसी ओर अग्र-सर होनेका प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यंत आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय-भोग ही कर्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालतमें कोई आश्चर्य नहीं कि काम-पिपासाका नियंत्रण बिलकुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है और अगर हम यह मानते हैं कि सन्तति-निग्रहका अत्यंत वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्म-संयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरणको ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्यकी सिद्धिका एक-मात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-संयमके साधनमें विश्वास रखते हैं वे दूसरोंको भी उससे प्रभावित करनेके लिए अपने अटूट विश्वासके साथ खुद ही इसका अमल शुरू कर दें। ऐसे लोगोंके लिए, मैं समझता हूं, विवाहकी जिस धारणाकी मैंने

पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भली-भांति ग्रहण करनेका मतलब है अपनी मनःस्थितिको बिलकुल बदल देना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें; बल्कि यही समस्त मानव-जातियोंके लिए नियम हो जाना चाहिए; क्योंकि इसके भंगसे मानव-प्राणियोंका दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चोंकी वृद्धि, सदा बढ़ती रहनेवाली बीमारियोंकी श्रृंखला और मनुष्यके नैतिक पतनके रूपमें उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-निग्रहसे नव-जात शिशुओंकी संख्या-वृद्धिपर किसी हदतक अंकुश रहता है, और साधारण स्थितिके मनुष्योंका थोड़ा बचाव हो जाता है; लेकिन व्यक्ति और समाजकी जो नैतिक हानि इससे होती है उसका पार नहीं; क्योंकि जो लोग भोगके लिए ही अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करते हैं; उनके लिए जीवनका दृष्टिकोण ही बिलकुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धार्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक आदर्शोंका बिलकुल बदल जाना, जिन्हें अभीतक हम बहुमूल्य निधिके रूपमें मानते रहे हैं। निस्सन्देह जो लोग विवाहके पुराने आदर्शोंको अन्ध-विश्वास मानते हैं, उनपर इस दलीलका ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्हीं लोगोंके लिए है जो विवाहको एक पवित्र संबंध मानते हैं और स्त्रीको पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं; बल्कि सन्तानके धारण और संरक्षणका गुण रखनेवाली माताके रूपमें मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओंने आत्म-संयमकी दिशामें जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभवसे इस विचारकी पुष्टि होती है, जिसे कि मैंने यहां उपस्थित किया है। विवाहकी प्राचीन धारणाके प्रखर प्रकाशमें होनेवाली खोजसे इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरे लिए तो अब विवाहित-जीवनमें ब्रह्मचर्य बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाहकी ही तरह एक मामूली बात हो गई है। सन्तति-निग्रहका और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पड़ता है। एक बार जहां स्त्री और पुरुषमें इस विचारने घर किया नहीं कि जननेन्द्रियोंका एक-मात्र

और महान् कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है, सन्तानोत्पत्तिके अलावा और किसी उद्देश्यसे सहवास करनेको वे अपने रज-वीर्यकी दण्डनीय क्षति मानने लगेंगे और उसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषमें होनेवाली उत्तेजनाको अपनी मूल्यवान शक्तिकी वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल बात नहीं है कि प्राचीन कालके वैज्ञानिकोंने वीर्य-रक्षाको क्यों इतना महत्त्व दिया है और क्यों इस बातपर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाजके कल्याणके लिए उसे शक्तिके सर्वोत्कृष्ट रूपमें परिणत करें। उन्होंने तो स्पष्टरूपसे इस बातकी घोषणा की है कि जो (स्त्री और पुरुष) अपनी काम-वासनापर पूर्ण नियंत्रण कर ले वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारकी इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपायसे प्राप्त नहीं की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियोंकी अधिक संख्या क्या, एक भी कोई हमें अपने बीचमें दिखाई नहीं पड़ता, इससे पाठकोंको घबराना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते हैं वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने हैं। उनके लिए तो बहुत-से-बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु हैं, जिन्होंने अपने शरीरका 'संयम' कर लिया है; पर मनपर अभी संयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ़ वे अभी नहीं हुए हैं कि उनपर प्रलोभनका कोई असर ही न हो; लेकिन यह इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति बहुत दुरूह है; बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारीके साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमेंसे अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी संयमका यत्न करते हैं, जबकि इसमें सफल होनेके लिए उन सब विषयों-के संयमका यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चंगुलमें मनुष्य फंस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुषोंके लिए भी वैसे ही प्रयत्नकी आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञानमें निष्णात होनेके अभिलाषी किसी विद्यार्थीको करना पड़ता है। यहां जिस रूपमें ब्रह्मचर्य लिया गया है, उस रूपमें जीवन-विज्ञानमें निष्णात होना ही वस्तुतः उसका अर्थ भी है।

हरिजन सेवक,

२१ मार्च १९३६

: ४ :

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं :

"आपके विचारोंको पढ़कर मैं बहुत समयसे यह मानता आया हूं कि सन्तति-निरोधके लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है; संभोग केवल सन्तानेच्छासे प्रेरित होकर होना चाहिए; बिना सन्तानेच्छाका भोग पाप है, इन बातोंको सोचते हैं तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। संभोग सन्तानके लिए किया जाय यह ठीक है; पर एक-दो बारके भोगसे सन्तान न हो, तो ? ऐसे समयको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिए ? एक-दो बारके संभोगसे सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहां पिण्ड छोड़ती है ? इस प्रकार वीर्यका बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको क्या यह कहा जाय कि ईश्वरकी इच्छा विरुद्ध होनेके कारण उसे भोगका त्याग कर देना चाहिए। ऐसे भोगके लिए तो बहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्रायः ऐसा भी देखनेमें आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्थामें हुई है, इसलिए आशाका त्याग करना कठिन है! यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री-पुरुष रोगसे मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है; लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाईके कैसे कर सकता है ? हिमालयपर चढ़नेके लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है, यहांतक कि हिमालयके सबसे ऊंचे शिखरपर आजतक कोई पहुंच नहीं सका है। इस प्रयत्नमें कई मनुष्योंने मृत्युकी भेंट की है। हर साल चढ़ाई करनेवाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयासको वे छोड़ते नहीं। विषयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाड़पर चढ़नेसे तो कठिन है ही; लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊंचा है। हिमालयपर

चढ़नेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इन्द्रिय-जीत मनुष्य आत्मानन्द पायगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढ़ता जायगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमें तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं और होना ही नहीं चाहिए। और जैसा पुरुषके लिए, ऐसा ही स्त्रीके लिए भी, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते हैं, तब वीर्यहानि असम्भावित हो जाती है और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। जब पति-पत्नी सन्तानकी इच्छा करते हैं तो, तभी एक-दूसरेका मिलन होता है। यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है अर्थात्—स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उचित है, भोग-तृप्तिके लिए कभी नहीं। यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्शकी बात। यदि हम इस आदर्शको स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियमका पालन नहीं करते। आदर्शकी बात करते हुए हम शक्तिका खयाल नहीं कर सकते; लेकिन आजकल भोग-तृप्तिको आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता, यह स्वयंसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नहीं होना चाहिए। अमर्यादित भोगसे नाश नहीं होता, यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकालसे रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोंको हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा हुई है; और ब्रह्मचर्य-पालनमें अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे पत्र-लेखकने बतलाई है, वह आपत्ति ही नहीं रहती है; क्योंकि सन्ततिके ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है; अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषोंका मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियमको जाननेके बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्रीने गर्भ-धारण नहीं किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकालके बाद, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षंतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्तिके लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचनसे और कार्यसे विकार-रहित होता है, उसे

मानसिक अथवा शारीरिक व्याधिका किसी प्रकार डर नहीं है। इतना ही नहीं; वल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोंसे भी मुक्त होते हैं और इसमें कोई आश्चर्यकी वात नहीं है। जिस वीर्यसे मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह वात शास्त्रोंमें तो कही गई है; लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्नसे सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोंके लिए है वह स्त्रियोंके लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुए शरीरसे विकार-रहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमें मन और शरीर दोनोंको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामें मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी वनता है।

हरिजन सेवक,
१३ मार्च १९३७

: ५ :

सम्भोगकी मर्यादा

बंगलोरसे एक सज्जन लिखते हैं :

"आप कहते हैं कि विवाहित दम्पतिको एकमात्र तभी सम्भोग करना चाहिए जब दोनों बच्चा पैदा करना चाहें; पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइये कि बच्चा पैदा करनेकी इच्छा किसीको क्यों हो ? बहुत-से लोग मां-बाप बननेकी जिम्मेदारीको पूरी तरह महसूस किये बगैर ही सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करते हैं और दूसरे, बहुत-से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे मां-बाप होनेकी जिम्मेदारियोंको निबाहनेमें असमर्थ हैं, बच्चोंकी हविस रखते हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे सन्तानोत्पत्तिके अयोग्य हैं। क्या आप यह नहीं सोचते कि इन लोगोंके लिए प्रजनन करना गलती है ?

बच्चा पैदा करनेकी इच्छाका उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हूं। बहुत-से लोग इसलिए बच्चोंकी इच्छा करते हैं कि वे उनकी सम्पत्तिके वारिस बनें और उनके जीवनकी नीरसताको मिटाकर सरस बनायें। कुछ लोग इसलिए भी पुत्रकी इच्छा करते हैं कि ऐसा न हुआ तो मरनेपर वे स्वर्गमें न जा सकेंगे। क्या इन सबका बच्चेकी इच्छा करना गलती नहीं है ?"

किसी बातके कारणोंकी खोज करना तो ठीक है; लेकिन हमेशा ही उन्हें पा लेना सम्भव नहीं है। सन्तानकी इच्छा विश्व-व्यापी है; लेकिन अपने वंशजोंके द्वारा अपनेको कायम रखनेकी इच्छा अगर काफी और सन्तोषजनक कारण नहीं है तो इसका कोई दूसरा सन्तोषजनक कारण मैं नहीं जानता। मगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाका जो कारण मैंने बतलाया है वह अगर काफी सन्तोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बातका मैं प्रतिपादन

कर रहा हूं, उसमें कोई दोष नहीं आता; क्योंकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पड़ती है। मैं पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफ़सोस नहीं है। मेरे लिए यह कोई ग़ैर-क़ानूनी बात नहीं है कि मुझमें जो भी सर्वोत्तम गुण हों उन्हें मैं दूसरेमें मूर्तरूपमें उतरे हुए देखूं। कुछ भी हो, जबतक खुद प्रजननमें ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जबतक मैं यह न देख लूं कि खाली आनन्दके लिए सम्भोग करना भी ठीक ही है, तबतक मुझे इस बातपर कायम रहना चाहिए कि सम्भोग तभी ठीक है जब कि वह सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे किया जाय। मैं समझता हूं कि स्मृतिकार इस बारेमें इतने स्पष्ट थे कि मनुने पहले पैदा हुए बच्चोंको ही धर्म्य (धर्मसे पैदा हुए) बतलाया है और बादमें पैदा हुए बच्चोंको काम्य (काम-वासनासे पैदा हुए) बतलाया है। इस विषयमें यथासम्भव अनासक्त भावसे मैं जितना अधिक सोचता हूं उतना ही अधिक मुझे इस बातका पक्का विश्वास होता जाता है कि इस बारेमें मेरी जो स्थिति है और जिसपर मैं क़ायम हूं वही सही है। मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषयके साथ जुड़ी हुई अनावश्यक गोपनीयताके कारण इस विषयमें हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाईकी जड़ है। हमारे विचार स्पष्ट नहीं हैं। परिणामोंका सामना करनेसे हम डरते हैं। अधूरे उपायोंको हम सम्पूर्ण या अन्तिम मानकर अपनाते हैं और इस प्रकार उन्हें आचरणके लिए बहुत कठिन बना लेते हैं। मगर हमारे विचार स्पष्ट हों, हम क्या चाहते हैं इस बातका हमें निश्चय हो तो हमारी वाणी और हमारे आचरण दृढ़ होंगे।

इस प्रकार, अगर मुझे इस बातका निश्चय हो कि भोजनका हरेक ग्रास शरीरको बनाने और कायम रखनेके ही लिए है तो स्वादकी खातिर मैं कभी खाना न चाहूंगा। यही नहीं; बल्कि मैं यह भी महसूस करूंगा कि अगर भूख या शरीरको क़ायम रखनेकी दृष्टिके अलावा कोई चीज सुस्वाद होनेके ही कारण खाना चाहूं तो वह रोगकी निशानी होगी; इसलिए मुझे उसको वाजिब और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझकर उसकी पूर्ति करनेके बजाय अपनी इस बीमारीको दूर करनेकी ही फ़िक्र करनी पड़ेगी। इसी तरह अगर मुझे इस बातका निश्चय हो कि प्रजननकी निर्विवाद इच्छाके बगैर

सम्भोग करना ग़ैर-क़ानूनी और शरीर, मन तथा आत्माके लिए विनाशक है, तो इस इच्छाका दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा—उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मनमें यह निश्चय न हो कि मेरी इच्छाकी पूर्ति करना क़ानून-सम्मत और हितकर है या नहीं। अगर मुझे ऐसी इच्छाके ग़ैर-क़ानूनी-पन या अनौचित्यका स्पष्ट रूपसे भान हो तो मैं उसे एक तरहकी बीमारी समझूंगा और अपनी पूरी शक्तिके साथ उसके आक्रमणोंका मुक़ाबला करूंगा। ऐसे मुक़ाबलेके लिए तब मैं अपनेको अधिक शक्तिशाली महसूस करूंगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो नहीं है; लेकिन हम असहाय हैं, वे ग़लती पर ही नहीं हैं; बल्कि झूठे भी हैं और इसलिए प्रतिरोधमें वे कमजोर रहते और हार जाते हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्म-निरीक्षण करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारोंमें वासनाकी इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारोंको ग़लत रूपमें व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके विचारोंकी सच्ची द्योतक हो तो कमज़ोरी-जैसी कोई बात नहीं हो सकती। हार तो हो सकती है; पर कमज़ोरी हरगिज़ नहीं।

इन सज्जनने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जानेवाले प्रजननपर जो आपत्ति की है वह बिलकुल ठीक है। उन्हें प्रजननकी कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहें कि सम्भोग हम प्रजननके लिए ही करते हैं तो वे अपनेको और संसारको धोखा देते हैं। किसी भी विषयपर विचार करनेमें सचाईका हमेशा सहारा लेना पड़ता है। सम्भोगके आनन्दको छिपानेके लिए प्रजननकी इच्छाका बहाना हरगिज़ न लेना चाहिए।

हरिजन सेवक,
२४ जुलाई १९३७

कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं :

"हालमें 'हरिजन'में श्रीमती सेंगर और महात्मा गांधीकी मुलाकातका जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारेमें मैं कुछ कहना चाहता हूं।

"इस बातचीतमें जिस खास बातकी ओर ध्यान नहीं दिया गया मालूम पड़ता है वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओंकी पूर्तिपर ही वह संतोष नहीं करता; बल्कि सुन्दरता, रंग-विरंगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहबने कहा है कि 'अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद ले; लेकिन अगर दो हों तो एकसे रोटी खरीद और एकसे फूल।' इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है, इसलिए हम उसे ऐसे कामोंके लिए भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर-धारणके लिए आवश्यक नहीं है। उसने तो अपनी आवश्यकता-को कलाका रूप दे रखा है और उन कलाओंकी खातिर मनों खून बहाया है। मनुष्यकी उत्पादक-बुद्धि नई-नई कठिनाइयों और समस्याओंको पैदा करके उनका तेल निकालनेके लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन, टॉलस्टाय, थोरो और गांधी उसे जैसा 'सरल-सादा' बनाना चाहते हैं वैसा बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज है; और उसे भी उसने एक महान् कलाके रूपमें परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्कको अपील करनेके लिए प्रकृतिका उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवनसे ही बिलकुल मेल नहीं खाती है। 'प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती।' जो लोग प्रकृतिके नामपर अपील करते हैं वे यह भूल करते हैं कि प्रकृतिमें केवल पर्वत तथा उपत्यकाएं और कुसुम-

बयारियां ही नहीं हैं, बल्कि बाढ़, झंझावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी नीत्सेका कहना है कि कलाकारकी दृष्टिसे प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरणसे काम लेती है और बहुत-सी चीजोंको छोड़ जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। 'प्रकृतिसे अध्ययन करना' कोई अच्छा चिह्न नहीं है; क्योंकि इन नगण्य चीजोंके लिए धूलमें लोटना अच्छे कलाकारके योग्य नहीं है। निम्न प्रकारकी बुद्धिके कार्यको, कला-विरोधी मामूली बातोंको, देखनेके लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं? हम यह जानते हैं कि जंगली जानवर अपने शरीरको बनाये रखनेकी आवश्यकतावश कच्चा मांस खाते हैं, स्वाद-वश नहीं। यह भी जानते हैं कि प्रकृतिमें तो पशुओंसे समागमकी ऋतुएं होती हैं। ऋतुओंके अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं; लेकिन उसी फिलासफरके अनुसार यह तो अच्छे कलाकारके योग्य नहीं है। जो मनुष्य स्वभावतः अच्छा कलाकार है इसलिए जब सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्यको बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्तिकी स्पष्ट इच्छासे प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली, इतनी हिसाब-किताबकी-सी बात है कि हमारे फिलासफरके कथनानुसार वह उसकी कला-प्रेमी प्रकृतिको अपील नहीं कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुषके प्रेमको एक बिलकुल दूसरे पहलूसे देखता है—ऐसे पहलूसे जिसका सन्तान-वृद्धिसे कोई सम्बन्ध नहीं। यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स-जैसे आप्त पुरुषोंके कथनोंसे स्पष्ट होती है। यह इच्छा यद्यपि आत्मासे उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक सम्भोगके बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समयतक रहेगा जबतक हम इस अंगको केवल आत्मामें पूरा नहीं कर सकते और उसके लिए शरीरयंत्रकी आवश्यकता समझते हैं। ऐसे ही सहवासके परिणामका सामना करना बिलकुल दूसरी समस्या है। यहीं सन्तान-निग्रहके आन्दोलनका काम आ जाता है; पर यह काम अगर स्वयं आत्माकी ही पुनः व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य अनुशासन द्वारा—आत्म-संयमके माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्योंकी पूर्ति होनी चाहिए

उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे विना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधारके सन्तति-निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी बातको समाप्त करनेसे पहले मैं यह और कहूंगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्यका महत्त्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। वैषयिक नियंत्रणको पूर्णतापर ले जानेवाली कलाके रूपमें मैं हमेशा उसकी सराहना करूंगा; लेकिन जैसे अन्य कलाओंकी सम्पूर्णता हमारे जीवनमें, (और नीत्सेके अनुसार) हमारे सारे जीवनमें, कोई हस्तक्षेप नहीं करती, वैसे ही ब्रह्मचर्यके आदर्शको मैं दूसरी बातोंपर प्रभुत्व पानेका सहारा नहीं बनने दूंगा—जनसंख्या-वृद्धि-जैसी समस्याओंके हल करनेका साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसे हौवा बना डाला है। युद्धकालीन बच्चोंके बारेमें तो हम जानते ही हैं। जिन सैनिकोंने अपना खून बहाकर अपने देशवासियोंके लिए समरांगणमें विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हें इसका श्रेय न देंगे कि उन्होंने रणक्षेत्रमें भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं, कोई ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूं कि इन बातोंको मद्दे-नज़र रखकर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्)में यह कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्री रत्या संयुज्यते' अर्थात् केवल रात्रिमें ही... (याने दिनके असाधारण समयको छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहां साधारण वैषयिक जीवनको भी ब्रह्मचर्यके ही समान बताया गया है, उसमें इतनी कठोरता तो जीवनके विविध रूपोंमें उलट-फेर करनेके फलस्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज़ हो, जिसमें कोरा शब्दाडम्बर, गालीगलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूंगा, जिससे पाठकोंके सामने समस्याके दोनों पहलू आ जायं, और वे अपने आप किसी निर्णयपर पहुंच सकें। इसलिए इस पत्रको मैं बड़ी खुशीके साथ प्रकाशित करता हूं। खुद मैं भी यह जाननेके लिए उत्सुक हूं कि जिस बातको विज्ञान-सिद्ध और हितकारी होनेका दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं, उसका उज्ज्वल पक्ष देखनेकी कोशिश करनेपर भी मुझे वह क्यों इतनी खलती है?

लेकिन मेरे सन्तोषकी कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती, जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित जीवनमें मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करनेवालोंको उससे कोई लाभ होता है। हां, अपने खुदके तथा दूसरे अनेक अपने मित्रोंके अनुभवके आधारपर इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूं। हममेंसे किसीने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला; लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर हुई और जैसे ही उस थकावटका असर मिटा नहीं कि मैथुनकी इच्छा तुरन्त ही फिर जागृत हो गई। हालांकि मैं सदासे जागरूक रहा हूं, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकारने मेरे कामोंमें बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमजोरीको समझकर ही मैंने आत्म-संयमका रास्ता पकड़ा, और इसमें सन्देह नहीं कि तुलनात्मक रूपसे काफी लम्बे-लम्बे समयतक मैं जो बीमारीसे बचा रहता हूं और शारीरिक एवं मानसिक रूपसे जो इतना अधिक और विविध प्रकारका काम कर सकता हूं कि जिसे देखनेवालोंने अद्भुत बतलाया है, उसका कारण मेरा यह आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जनने जो-कुछ पढ़ा उसका उन्होंने गलत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं; सुन्दरता और रंग-बिरंगापन भी उसे चाहिए ही; लेकिन मनुष्यकी कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्तिने अपने सर्वोत्तम रूपमें उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयममें कलाका और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्तिके लिए न हो) ऐसे सहवासमें असुन्दरताका दर्शन करे। उसमें कलात्मकताकी जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जाननेकी शिक्षा दी है कि विविध रंगोंका चाहे-जैसा मिश्रण सौन्दर्यका चिह्न नहीं है, और न हर तरहका आनन्द ही अपने-आपमें कोई अच्छाई है। कलाकी ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगितामें ही आनन्दकी खोज करे, याने वही आनन्दोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकासके प्रारम्भिक कालमें ही उसने यह जान लिया था कि खानेके लिए ही उसे

खाना नहीं खाना चाहिए, जैसा कि हममेंसे कुछ लोग अभी भी करते हैं; वल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। वादमें उसने यह भी जाना कि जीवित रहनेके लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, वल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभुकी सेवाके लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सवको वनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जव उसने विपय-सहवास या मैथुनजनित आनन्दकी वात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रियकी भांति जननेंद्रियका भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य याने सदुपयोग इसीमें है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके ही लिए सहवास किया जाय इसके सिवा और किसी प्रयोजनसे किया जानेवाला सहवास अ-सुन्दर है और ऐसा करनेवाले व्यक्ति और उसकी नस्लके लिए उसके वहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूं, अव इस दलीलको और आगे वढ़ानेकी कोई जरूरत नहीं।

उक्त सज्जनका यह कहना ठीक है कि मनुष्य आवश्यकतासे प्रेरित होकर कलाकी रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कारकी जननी है; वल्कि कलाकी भी जननी है। इसलिए जिस कलाका आधार आवश्यकता नहीं है, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छाको हमें आवश्यकताका नाम नहीं देना चाहिए। मनुष्यकी स्थिति तो एक प्रकारसे प्रयोगात्मक है। इस वीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकारकी शक्तियां अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभनका शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनसे लड़ते हुए, उनका शिकार न वननेके रूपमें उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने माने हुए वाहरी दुश्मनोंसे तो लड़ता है; किन्तु अपने अन्दरके विविध शत्रुओंके आगे अंगुली भी नहीं उठा सकता या उन्हें अपना मित्र समझनेकी ग़लती करता है, वह योद्धा नहीं है। "उसे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जनका यह कहना ग़लत है "कि उसे भी उसने (मनुष्यने) एक महान् कलाके ही रूपमें परिणत कर दिया है।" क्योंकि युद्धकी कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्धको

उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषोंने बलिदानका गलत अर्थ लगाकर बजाय अपनी दुर्वासनाओंके, बेचारे निर्दोष पशुओंका बलिदान शुरू कर दिया। अबीसीनियाकी सीमामें आज जो-कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौन्दर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जनने उदाहरणके लिए जो नाम चुने हैं, वे भी (अपने) दुर्भाग्यसे ठीक नहीं चुने; क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉल्स्टाय तो अपने समयमें प्रथम श्रेणीके कलाकार थे और उनके नाम हममेंसे अनेकोंके मरकर भुला दिये जानेके बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे।

'प्रकृति' शब्दका उक्त सज्जनने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता है। प्रकृतिका अनुसरण या अध्ययन करनेके लिए जब मनुष्योंको प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े-मकोड़ों या शेरकी तरह काम करने लगें; बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्यकी प्रकृतिका उसके सर्वोत्तम रूपमें अध्ययन किया जाय। मेरे खयालसे वह सर्वोत्तम रूप मनुष्यकी नई सृष्टि पैदा करनेकी प्रकृति है, या जो-कुछ भी वह हो, उसीके अध्ययनके लिए कहा जाता है, लेकिन शायद इस बातको जाननेके लिए काफी प्रयत्नकी आवश्यकता है। पुराने लोगोंके उदाहरण देना आजकल ठीक नहीं है। उक्त सज्जनसे मेरा कहना है कि नीत्से या प्रश्नोपनिषद्‌को बीचमें घुसेड़ना व्यर्थ है। मेरे लिए तो इस बारेमें अब उद्धरणोंकी कोई जरूरत नहीं रही है। देखना यह है कि जिस बारेमें हम चर्चा कर रहे हैं, उसमें तर्क क्या कहता है? प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते हैं कि जननेंद्रियका सदुपयोग केवल इसीमें है कि प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपयोग दुरुपयोग ही है, यह बात ठीक है या नहीं? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोगको रोककर सदुपयोग पर जानेमें कितनी ही कठिनाई क्यों न हो, उससे वैज्ञानिक शोधकको घबराना नहीं चाहिए।

हरिजन सेवक,
४ अप्रैल १९३६

: ७ :

सुधारक बहनोंसे

एक बहनसे गम्भीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम सन्तति-निरोध-सम्बन्धी मेरी स्थितिको अभीतक लोगोंने काफी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंका मैं जो विरोध करता हूं वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहां पश्चिमसे आये हैं। कुछ पश्चिमी चीज़ें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिमके लिए हैं और कृतज्ञताके साथ मैं उनका प्रयोग करता हूं। अतएव कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंसे मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोषकी दृष्टिसे ही है।

मैं यह मानता हूं कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साधनोंका प्रतिपादन करनेवालोंमें जो सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं वे उन्हें उन स्त्रियोंतक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो सन्तानोत्पत्तिसे बचते हुए अपनी और अपने पतियोंकी विषय-वासनाको तृप्त करना चाहती हैं; लेकिन मेरे ख़यालमें, मानव-प्राणियोंमें यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव-कुटुम्बकी आध्यात्मिक गतिके लिए घातक है। इसके ख़िलाफ़ अन्य बातोंके साथ अक्सर पेन के लार्ड डासनकी यह राय पेश की जाती है :

"विषय-सम्बन्धी प्रेम संसारकी एक प्रचंड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभावको तथ्य-रूपमें स्वीकार करना ही होगा, आप इसका दमन नहीं कर सकते। आप चाहें तो इसे अच्छे रूपमें परिणत कर सकते हैं; किन्तु इसके प्रवाहको रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाहका स्रोत अपर्याप्त या ज़रूरतसे ज्यादा प्रतिबन्ध-युक्त हुआ तो यह अनियमित

स्रोतोंसे निकल पड़ेगा। आत्म-संयममें हानिकी सम्भावना रहती है। और यदि किसी जातिमें विवाह होनेमें कठिनाई होती हो या बहुत देरमें जाकर विवाह होते हो तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धोंकी वृद्धि हो जायगी। इस बातको तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हों और इस बातपर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है; लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं वह हमारे प्रेमका शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्तिका कोई विचार या इरादा नहीं होता। तो क्या हम सब गलत ही करते आ रहे हैं? या, यह बात है कि धर्मका हमारे वास्तविक जीवनसे आवश्यक सम्पर्क नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारणके बीच खाई पड़ गई है? जबतक किसी सत्ता या शासकका, और धर्माधिकारियोंको भी मैं इन्हींमें शुमार करता हूं, इस नौजवानोंके प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहसपूर्ण और वास्तविकताके अधिक अनुकूल न होगा तबतक उनकी वफ़ादारी कभी प्राप्त नहीं होगी।

"फिर सन्तानोत्पत्तिके अलावा भी विषय-प्रेमका अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवनमें स्वस्थ और सुखी रहनेके लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वरकी देन है तो उसके उपयोगका ज्ञान भी प्राप्त करनेके लायक़ है। अपने क्षेत्रमें यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक की; बल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री-पुरुष दोनोंकी शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरेको जो शारीरिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनोंमें एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेमसे उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेमसे होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज़ है; ऐसे अधिकांश व्यक्ति, जो किसी भी रूपमें अच्छे हैं, काम-भावना रखनेमें समर्थ हैं। काम-भावना-विहीन विषय-प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपनके समान एक शारीरिक अति है। अब चूंकि 'प्रार्थना-पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है,

में यह बड़े आदरके साथ सुझाना चाहता हूं कि उसके विवाह-विधानमें यह और जोड़ दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुषके पारस्परिक प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाहका उद्देश्य है ।'

"अब मैं यह सब छोड़कर सन्तति-निग्रहके सबसे जरूरी प्रश्न पर आता हूं । सन्तति-निग्रह स्थायी होनेके लिए आया है । वह तो अब जम चुका है . . .और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा । इन्कार करनेसे उसका अन्त नहीं होगा । जिन कारणोंसे प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति-निग्रह करना चाहते हैं, उनमें कभी-कभी तो स्वार्थ होता है; लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते हैं । विवाह करके अपनी सन्तानको जीवन-संघर्षके योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन-निर्वाहका खर्च, विविध करोंका बोझ—ये सब इसके लिए जोरदार कारण हैं । और फिर शिक्षितवर्गके अन्दर स्त्रियां अपने पतियोंके काम-धन्धों तथा सार्वजनिक जीवनमें भाग लेनेकी भी इच्छा करती हैं । यदि वे बार-बार गर्भवती होती रहें तो वे इच्छाएं पूरी नहीं हो सकतीं । यदि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका सहारा न लिया जाय तो देरमें विवाह करनेका तरीका अख्तियार करना पड़ेगा; लेकिन ऐसा होनेपर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूपसे अपनी विषयेच्छा तृप्त करनेके विविध दुष्परिणाम सामने आयंगे । एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धोंकी बुराई करें और दूसरी ओर विवाहके मार्गमें बाधाएं उपस्थित करें तो उससे कोई लाभ न होगा । बहुत-से लोग कहते हैं 'सम्भव है कि सन्तति-निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छापूर्ण संयम ही है; लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि उसका कोई असर पड़ा तो वह अव्यावहारिक और स्वास्थ्य व सुखके लिए हानिकर होगा ।' परिवारके लिए, मान लो, हम चार बच्चोंकी मर्यादा बना लें, तो यह विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक तरहका संयम ही होगा, जो देर-देरमें संतानोत्पत्ति होनेके कारण ब्रह्मचर्यके समान ही माना जायगा । और जब हम इस बातपर ध्यान दें कि आर्थिक कठिनाईके कारण विवाहित जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंमें बहुत कठोर संयम करना पड़ेगा, जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है, तो मैं

कहता हूं कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकांश व्यक्तियोंके लिए उसका दमन करना असंभव होगा और यदि उसे जबर्दस्ती दबानेका यत्न किया तो स्वास्थ्य और सुखपर उसका बहुत बड़ा असर पड़ेगा और नैतिकताके लिए भी वह बहुत खतरनाक होगा। यह तो बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमीके पास पानी रखकर उससे कहा जाय कि खबरदार, इसे पीना मत। नहीं, संयम द्वारा सन्तति-निग्रहसे कोई लाभ न होगा और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।

"यह तो अस्वाभाविक और मूलतः अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यताका तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियोंको वशमें करके उन्हें इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानीसे पैदा करनेके लिए जब पहले-पहल औजारों (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है; क्योंकि प्रसव-पीड़ा सहनेके लिए ही तो भगवान्ने स्त्रियोंको बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रह करनेकी है, उसमें भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है, अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अंतमें क्या मैं यह प्रार्थना करूं कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्नका विचार करते समय इन पुरातन परम्पराओंकी परवाह नहीं करेंगे जो व्यर्थ-सी हो गई हैं; बल्कि ऐसे ही अन्य कुछ प्रश्नोंकी तरह, नये संसारकी आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञानके प्रकाशमें ही इस प्रश्नपर विचार करेंगे ?"

यह कितने बड़े डॉक्टर हैं इससे इन्कार नहीं किया जा सकता; लेकिन डॉक्टरके रूपमें उनका जो बड़प्पन है, उसके लिए काफी आदरका भाव रखते हुए भी मैं इस बातपर सन्देह करनेका साहस करता हूं कि उनका यह कथन कहांतक ठीक है, खासकर उस हालतमें जबकि यह उन स्त्री-पुरुषोंके अनुभवके विपरीत है, जिन्होंने आत्म-संयमका जीवन बिताया है; किन्तु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डॉक्टर लोग आमतौरपर उन्हीं लोगोंके सम्पर्कमें आते हैं

जो स्वास्थ्यके नियमोंकी अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारीके अच्छा होनेके लिए क्या करना चाहिए, यह तो वे अक्सर सफलताके साथ बता देते हैं; लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशामें क्या कर सकते हैं? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषों पर संयमके जो असर पड़नेकी बात लार्ड डासन कहते हैं उसे अत्यन्त सावधानीके साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्तिको स्वतः कोई बुराई नहीं मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध माननेकी ही है; लेकिन आधुनिक युगमें तो कोई बात स्वयंसिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीज़की बारीकीसे छान-बीन की जाती है। अतः यह मानना सरासर ग़लती होगी कि चूंकि अबतक हम विवाहित जीवनमें विषय-भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है या स्वास्थ्यके लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी पुरानी प्रथाओंको हम छोड़ चुके हैं और उसके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथाको ही उन स्त्री-पुरुषोंके अनुभवकी कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक-दूसरेकी सहमतिसे संयमका जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरहका लाभ उठा रहे हैं?

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधारपर भी भारतमें सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंका विरोधी हूं। भारतमें नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है? इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्रमें ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहांकी प्रथा है, और विवाहित जीवनमें संयम रखनेको उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखनेको उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियोंसे उसके आस-पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायं। ऐसे वातावरणमें सन्तति-विरोधक कृत्रिम साधनोंसे तो कठिनाइयां और बढ़ेंगी ही। जिन बेचारी लड़कियोंसे यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियोंकी इच्छा-पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि बच्चे पैदा तो न करें, पर विषय-भोग किये जायं, इसीमें उनका भला है। और इस दुहरे

उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्हें सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोंका सहारा लेना होगा !!!

मैं तो विवाहित बहनोंके लिए इस विद्याको बहुत घातक समझता हूं। मैं यह नहीं मानता कि पुरुषकी तरह स्त्रीकी काम-वासना भी अदम्य होती है। मेरी समझमें, पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीके लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देशमें जरूरत बस इसी बातकी है कि स्त्री अपने पति तकसे 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियोंको मिलनी चाहिए। स्त्रियोंको हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियोंके हाथकी कठपुतली या औज़ार-मात्र बन जायं, यह उनके कर्तव्यका अंग नहीं है। और कर्तव्यकी ही तरह उनके अधिकार भी हैं। जो लोग सीताको रामकी आज्ञानु-वर्तिनी दासीके रूपमें ही देखते हैं वे इस बातको महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनताकी भावना कितनी थी और राम हरेक बातमें उनका कितना ख़याल रखते थे। भारतकी स्त्रियोंमें सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधन अख्तियार करनेके लिए कहना तो बिलकुल उल्टी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासतासे मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीरकी पवित्रताकी शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवताकी सेवामें कितना गौरव है, इस बातकी शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारतकी स्त्रियोंका तो उद्धार ही नहीं हो सकता, और इसलिए सन्तानोत्पत्तिमें रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए उन्हें सिर्फ सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिएं।

जो बहनें सचमुच उन स्त्रियोंके दुःखसे दुखी हैं, जिन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चोंके झमेलेमें पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो-कुछ चाहती हैं, वह एकदम तो कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोंके पक्षमें आन्दोलनसे भी नहीं होनेवाला है। हरेक उपायके लिए सवाल तो शिक्षाका ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढंगकी।

हरिजन सेवक,
२ मई १९३६

: ८ :

फिर वही संयमका विषय

एक सज्जन लिखते हैं:

"इन दिनों आपने ब्रह्मचर्यपर जो लेख लिखे हैं, उनसे लोगोंमें खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारोंके साथ सहानुभूति है उन्हें भी लम्बे अर्सेतक संयम रख सकना मुश्किल पड़ रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव-जातिपर लागू कर रहे हैं; परन्तु आपने खुद भी तो कबूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारीकी शर्तें पूरी नहीं कर सकते; क्योंकि आप स्वयं विकारसे खाली नहीं हैं और चूंकि आप यह भी मानते हैं कि दम्पतिको संतानकी संख्या सीमित रखनेकी ज़रूरत है, इसलिए अधिकांश मनुष्योंके लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे संतति-निरोधके कृत्रिम साधन काममें लावें।"

मैं अपनी मर्यादाएं स्वीकार कर चुका हूं। इस विवादमें तो ये ही मेरे गुण हैं। कारण, मेरी मर्यादाओंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैं भी अधिकांश मनुष्योंकी भांति दुनयवी आदमी हूं और असाधारण गुणवान् होनेका मेरा दावा भी नहीं है। मेरे संयमका हेतु भी बिलकुल मामूली था। मैं तो देश या मनुष्य-समाजकी सेवाके खयालसे सन्तान-वृद्धि रोकना चाहता था। देश या समाजकी सेवाकी बात दूरकी है। इसकी अपेक्षा बड़े कुटुम्बका पालन न कर सकना संतति-नियमनके लिए अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोणसे इस पैंतीस वर्षके संयममें मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषयमें मुझे आज भी जागरूक रहनेकी ज़रूरत है। इससे भलीभांति सिद्ध है कि मैं बहुत-कुछ साधारण मनुष्य हूं। इसलिए मेरा कहना

है कि जो बात मेरे लिए सम्भव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्यके लिए संभव हो सकती है ।

कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंके साथ मेरा झगड़ा इस बातपर है कि वे यह मान बैठे हैं कि मामूली मनुष्य संयम रख ही नहीं सकता । कुछ लोग तो यहांतक कहते हैं कि यदि वह समर्थ हो भी तो उसे संयम नहीं रखना चाहिए । ये लोग अपने क्षेत्रमें कितने भी बड़े आदमी हों, में अत्यन्त विनम्रता किन्तु विश्वासके साथ कहूंगा कि उन्हें इस बातका अनुभव नहीं है कि संयमसे क्या-क्या हो सकता है ! उन्हें मानवीय आत्माको मर्यादित करनेका कोई हक नहीं है । ऐसे मामलोंमें मेरे जैसे एक आदमीकी निश्चित गवाही भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है; बल्कि निर्णायक भी है । सिर्फ इसी वजहसे कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते हैं, मेरी गवाहीको निकम्मी करार दे देना गम्भीर खोजकी दृष्टिसे उचित नहीं है ।

परन्तु एक बहनकी दलील और भी जोरदार है । उनके कहनेका मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायोंके समर्थक लोग तो हालहीमें सामने आये हैं । मैदान आप संयमके समर्थकोंके हाथमें पीढ़ियोंसे, शायद हजारों वर्षोंसे, रहा है, तो आप लोगोंने क्या कर दिखाया ? क्या दुनियाने संयमका सबक सीख लिया है ? बच्चोंके भारसे लदे हुए परिवारोंकी दुर्दशा रोकनेके लिए आप लोगोंने क्या किया है ? आहत माताओंकी पुकारको आप लोगोंने सुना है ? आइए, अब भी मैदान आप लोगोंके लिए खाली है । आप संयमका समर्थन करते रहिए, हमें इसकी चिन्ता नहीं है, और अगर आप पतियोंकी जबर्दस्तीसे स्त्रियोंको बचा सकें तो हम आपकी सफलता भी चाहेंगे, मगर आप हमारे तरीकोंकी निन्दा क्यों करते हैं ? हम तो मनुष्यकी साधारण कमजोरियों और आदतोंके लिए गुंजाइश रखकर चलते हैं और हम जो उपाय करते हैं अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे करीब-करीब अचूक साबित होते हैं ।"

इस व्यंगमें स्त्री-हृदयकी पीड़ा भरी हुई है । जो कुटुम्ब बच्चोंकी बढ़ती हुई संख्याके मारे सदा दरिद्र रहते हैं, उनके लिए इस बहनका

हृदय दयासे भर गया है। यह सभी जानते हैं कि मानवीय दुःखकी पुकार पत्थरके दिलोंको भी पिघला देती है। भला यह पुकार उच्चात्मा बहनोंको प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है? पर अगर हम भावावेशमें वह जायं और डूबतेकी तरह किसी भी तिनकेका सहारा ढूंढने लगें तो ऐसी पुकार हमें आसानीसे गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमानेमें रह रहे हैं, जिसमें विचार और उनके महत्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे हैं। धीरे-धीरे होनेवाले परिणामोंसे हमको संतोष नहीं होता। हमें अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देशकी भलाईसे तसल्ली नहीं होती। हमें सारे मानव-समाजका खयाल होता है, मानवताकी उद्देश्य-सिद्धिमें यह कम सफलता नहीं है।

.परन्तु मानवीय दुःखोंका इलाज धीरज छोड़नेसे नहीं होगा और सब पुरानी बातोंको सिर्फ पुरानी होनेकी वजहसे छोड़ देनेसे होगा। हमने पूर्व जन्ममें भी वे ही स्वप्न देखे थे जो आज हमें उत्साहसे अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन स्वप्नोंमें इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी संभव है कि एक ही प्रकारके दुःखोंका जो उपाय उन्होंने बताया वह हमारे मानसके आशातीत रूपमें विशाल हो जानेपर लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभवके आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिंसा मुट्ठी-भर लोगोंके लिए ही नहीं हैं; बल्कि सारे मनुष्य-समाजके लिए रोजमर्राके कामकी चीजें हैं, ठीक उसी तरह संयम थोड़े-से महात्माओं-के लिए नहीं; बल्कि सब मनुष्योंके लिए है। और जिस तरह बहुत-से आदमियोंके झूठे और हिंसक होनेपर भी मनुष्य-समाजको अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए, उसी प्रकार बहुतसे या अधिकांश लोग भी संयम-का संदेश स्वीकार न कर सकें तो इस विषयमें भी हमें अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होनेपर भी ग़लत फ़ैसला नहीं करता। लोगोंकी नज़रोंमें वह अपनेको कठोर हृदय बन जाने देगा; क्योंकि वह जानता है कि कानूनको बिगाड़ देनेमें सच्ची दया नहीं है। हमें नाशवान शरीर या इन्द्रियोंकी दुर्बलताको भीतर

विराजमान अविनाशी आत्माकी दुर्बलता नहीं समझ लेना चाहिए। हमें तो आत्माके नियमानुसार शरीरको साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मतिमें ये नियम थोड़े-से और अटल हैं और उन्हें सभी मनुष्य समझ और पाल सकते हैं। इन नियमोंको पालनेमें कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभीपर होते हैं। अगर हममें श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि मनुष्य-समाजको अपने ध्येयकी प्राप्तिमें या उसके निकट पहुंचनेमें लाखों बरस लगेंगे। 'जवाहरलाल' की भाषामें, हमारी विचार-सरणी ठीक होनी चाहिए।

परन्तु उस बहनकी चुनौतीका जवाब देना तो बाक़ी ही रह गया। संयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनोंसे उनके साधन भिन्न हैं, वैसे ही उनका प्रचारका तरीका अलग है; और होना चाहिए। संयमवादियोंको चिकित्सालयोंकी जरूरत नहीं है, वे अपने उपायोंका विज्ञापन भी नहीं कर सकते; क्योंकि यह कोई बेचने या दे देनेकी चीजें तो हैं नहीं। कृत्रिम साधनोंकी टीका करना और उनके उपयोगसे लोगोंको सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्यका ही अंग है। उनके कार्यका रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है; किन्तु वह तो स्वभावतः ही अदृश्य होता है। संयमका समर्थन कभी बन्द नहीं किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। संयमका सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होंगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

हरिजन सेवक,
३० मई १९३६

: ६ :

संयम द्वारा सन्तति-निग्रह

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनों पड़ा रहा :

"आजकल सारी दुनियामें सन्तति-निग्रहका समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नहीं। आपके संयम-सम्बन्धी लेखोंको मैंने पढ़ा है। संयममें मेरा विश्वास है।

अहमदाबादमें थोड़े दिन पहले एक सन्तति-निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकिया, टयूब वगैरहका समर्थन करके स्त्रियोंको हमेशाके लिए संभोगवती करना चाहते हैं।

मुझे आश्चर्य होता है कि जीवनके अख़ीरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजाको निचोड़ डालनेकी हिमायत करते हैं !

इसके बजाय सन्तति-नियमन-समिति स्थापित की होती तो ? आप गुजरात पधार रहे हैं, इसलिए मेरी ऊपरकी प्रार्थना ध्यानमें रखकर गुजरातके नारी-तेजको प्रकाश दीजिएगा।

आजके डॉक्टर और वैद्य मानते हैं कि रोगियोंको संयमका पाठ सिखानेसे उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हें भूखों मरना पड़ेगा।

इस प्रकारके सन्तति-निग्रहसे समाज बहुत गहरे और अंधेरे खड्डमें चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाशमें रहना है तो संयमको अपनाये बिना छुटकारा नहीं। बगैर संयमके मनुष्य कभी ऊंचा नहीं चढ़ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढ़ेगा। और फिर रोगका तो पूछना ही क्या ?"

इस बीचमें मैं अहमदाबाद हो आया हूं। उपर्युक्त विषयपर तो मुझे वहां अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला नहीं; पर लेखक-के इस कथनको मैं अवश्य मानता हूं कि सन्तति-निग्रहका नियमन केवल

संयमसे ही सिद्ध किया जाय। दूसरी रीतिसे नियमन करनेमें अनेक दोष उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। जहां इन नियमनने घर कर लिया है, वहां दोष साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, जो संयम-रहित नियमनके समर्थक इन दोषोंको नहीं देख सकते; क्योंकि संयम-रहित नियमनने नीतिके नामसे प्रवेश किया है।

अहमदाबादमें जो समिति बनाई गई है उसके हेतुके विषयमें यह कहना ज्यादती है कि लेखकने जैसा लिखा है वह वैसा ही है; पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्तिका परिणाम तो अवश्य विषय-भोग बढ़ानेमें ही आना है। पानीको उंडेलें तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विषय-भोग बढ़ानेवाली युक्तियां रची जायंगी तो उनसे वह भोग बढ़ेगा ही।

इसी प्रकार डॉक्टर और वैद्य संयमका पाठ सिखाय तो उनकी कमाई मारी जायगी, इससे वे संयम नहीं सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है। संयमका पाठ सिखाना डॉक्टर-वैद्योंने अपना क्षेत्र आजतक माना नहीं; मगर डॉक्टर और वैद्य इस तरफ ढलते जा रहे हैं, इस बातके चिह्न जरूर नजर आते हैं। उनका क्षेत्र व्याधियोंके कारण शोधने और रोग मिटाने-का है। अगर वे व्याधियोंके कारणोंमें असंयम-स्वच्छन्दताको अग्रस्थान न देंगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकलनेका समय आ गया है। ज्यों-ज्यों जन-समाजकी समझ-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसे, अगर रोग जड़-मूलसे नष्ट न हुआ तो सन्तोष होनेका नहीं और जबतक जन-समाज संयमकी ओर नहीं ढलेगा, व्याधियोंको रोकनेके नियमोंका पालन नहीं करेगा, तबतक आरोग्यकी रक्षा करना असम्भव है। यह इतना स्पष्ट है कि अन्तमें इसपर सभी कोई ध्यान देंगे, और प्रामाणिक डॉक्टर संयमके मार्ग पर अधिक-से-अधिक जोर देंगे। संयम-रहित निग्रह भोग बढ़ानेमें अधिक-से-अधिक हाथ बंटायगा, इस विषयमें मुझे तो शंका नहीं। इसलिए अहमदाबादकी समिति अधिक गहरे उतरकर असंयमके भयंकर परिणामोंपर विचार करके स्त्रियोंको संयमकी सरलता और आवश्यकताका ज्ञान करानेमें अपने समयका उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है। (ह० से०, १२.९.३६)

: १० :

कैसी नाशकारी चीज़ है ?

डॉ० सोखे और डॉ० मंगलदासके बीच हाल हीमें जो उस बारह-मासी विषय अर्थात् सन्तति-निरोधपर वाद-विवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डॉ० अन्सारीके मतको प्रकट करनेकी हिम्मत हो रही है, जो डॉ० मंगलदासके समर्थनमें हैं। करीबन एक सालकी बात है। मैंने स्वर्गीय डॉ० साहबको लिखा था कि वैद्यककी दृष्टिसे आप इस विवाद-ग्रस्त विषयमें मेरे मतका समर्थन कर सकते हैं या नहीं ? मुझे यह जानकर आश्चर्य और खुशी हुई कि उन्होंने मेरा समर्थन किया। पिछली बार जब मैं दिल्ली गया था, तब इस विषयमें उनसे मेरी रू-बरू बातचीत हुई थी और मेरे अनुरोध करने पर उन्होंने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-बन्धुओंके अनुभवके आधारपर सप्रमाण अंकों सहित यह सिद्ध करनेके लिए कि, इन कृत्रिम साधनोंका उपयोग करनेवालोंको कितनी जबर्दस्त हानि पहुंच रही है, एक लेख-माला लिखनेका वचन दिया था। उन्होंने तो उन मनुष्योंकी दयनीय अवस्थाका हू-बहू वर्णन सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्नियां और अन्य स्त्रियां सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोंको काममें ला रही हैं, उनसे कुछ दिन सम्भोगके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेपर वे अमर्यादित भोग-विलासपर टूट पड़े। नित्य नई-नई औरतोंसे मिलनेकी उन्हें अदम्य लालसा होने लगी और आखिर पागल हो गए। आह ! डॉक्टर साहब अपनी उस लेखमाला-को शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे !

कहा जाता है कि बर्नाडशाने भी यही कहा है कि सन्तति-निरोधक साधनोंका उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुषोंका सम्भोग तो प्रकृति-विरुद्ध

वीर्य-नाशसे किसी प्रकार कम नहीं है। एक क्षण-भर सोचनेसे पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इस बुरी टेवके शिकार बनकर धीरे-धीरे अपने पौरुषसे हाथ धो लेनेवाले विद्यार्थियोंके करुणा-जनक पत्र तो मुझे करीब-करीब रोज मिलते हैं। कभी-कभी शिक्षकोंके भी पत्र मिलते हैं। 'हरिजन-सेवक' में लाहौरके सनातनधर्म कालेजके आचार्यका जो पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठकोंको पता होगा, जिसमें उन्होंने उन शिक्षकोंके विरुद्ध बड़ी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियोंके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्रकी जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्यजीने अपने पत्रमें किया था। इन उदाहरणोंसे तो मैं यही नतीजा निकालता हूं कि अगर पति-पत्नीके बीचमें भी मैथुनके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेकी संभावनाको लेकर संभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति-विरुद्ध सेवनसे निश्चित रूपसे होता है।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनोंके बहुत-से हिमायती परोपकारकी भावनासे ही प्रेरित होकर इन चीजोंका अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे हैं; पर यह परोपकार अस्थायी है। मैं इन भले आदमियोंसे अनुरोध करता हूं कि ज़रा परिणामोंका तो खयाल करें। वे गरीब लोग कभी पर्याप्त मात्रामें उनका उपयोग नहीं कर सकेंगे, जिनतक यह उपकारी पुरुष पहुंचाना चाहते हैं। और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिए वे जरूर इनका उपयोग करेंगे, और अपने साथियोंका नाश करेंगे; पर अगर यह पूरी तरहसे सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्यकी दृष्टिसे यह चीज लाभ-दायक है, तो यह भी सह लिया जाता। इनके और भावी सुधारकोंके लिए डॉ० अन्सारीकी राय—अगर उनके विषयमें मेरे शब्दोंको कोई प्रामाण्य माने—एक गम्भीर चेतावनी है।

हरिजन सेवक,

१२ अक्तूबर १९३६

: ११ :

अरण्य-रोदन

"अभी हाल हीमें सन्तति-नियमनकी प्रचारिका मिसेज़ सेंगरके साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझपर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-विन्दुपर सन्तोष और पसन्दगी जाहिर करनेके लिए मैं आपको यह पत्र लिखने बैठा हूं। आपकी हिम्मतके लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस सालसे मैं लड़कोंको पढ़ानेका काम करता हूं। मैंने हमेशा उन्हें देह-दमन और निस्वार्थ जीवन बितानेके लिए तालीम दी है। जब मिसेज़ सेंगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थीं, तब हाईस्कूलके लड़के-लड़कियां उनकी दी हुई सूचनाओंका उपयोग करने लग गये थे और परिणामका डर दूर हो जानेसे उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज़ सेंगरकी शिक्षा कहीं व्यापक हो गई तो सारा समाज विषय-सेवनके पीछे पड़ जायगा, और शुद्ध प्रेमका दुनियासे नामो-निशानतक मिट जायगा। मैं मानता हूं कि जनताको उच्च आदर्शोंकी शिक्षा देनेमें सदियां लग जायंगी; पर यह काम शुरू करनेके लिए अनुकूल-से-अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज़ सेंगर विषयको ही प्रेम समझ बैठी हैं; पर यह भूल है; क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन-से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

"डॉ० ऐलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बातमें सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगोंके जो दूसरी तरह अपने विषयोंको उत्तेजित करते हों और पहलेसे ही अपने मनपर काब खो चुके हों। मिसेज़ सेंगरका यह बयान कि अधिकांश डॉक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-पालनसे हानि होती है; बिलकुल ग़लत है। मैं तो देखता

हूं कि यहां कई वड़े-वड़े डॉक्टर अमेरिकन सोश्यल हाइजीन (सामाजिक आरोग्य-शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालनको लाभदायक मानते हैं।

"आप एक वड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्रामके तमाम चढ़ाव-उतारोंका वहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूं। आप जगत्में उन इने-गिने व्यक्तियोंमेंसे हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-सम्वन्धके प्रश्नपर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि-विन्दुसे विचार किया है। मैं आपको यह जताना चाहता हूं कि महासमरके इस पार भी आपके आदर्शोंके साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहांपर है।

"इस नेक कामको जारी रखें, ताकि नवयुवक-वर्ग सच्ची वातको जान ले; क्योंकि भविष्य इसी वर्गके हाथोंमें है।

"अपने विद्यार्थियोंके साथ अपने संवादमेंसे मैं छोटा-सा उद्धरण यहां देना चाहता हूं—'निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण-प्रवृत्ति-मेंसे तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी; उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा, पर अगर तुम अपनी निर्माणशक्तिको आज विषय-तृप्तिका साधन वना लोगे, तो तुम अपनी रचना-शक्तिपर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक वलका नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्तिके हेतुके विना या सन्ततिका निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम प्रकृतिके नियम-का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियोंका हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलतामें अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणोंका विकास नहीं कर पायंगे, जिनके वलपर हम उस नवीन मानव-समाजकी रचना कर सकें जिसमें कि दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हों।"

"मैं जानता हूं कि यह सव पूर्वकालके नवियोंके अरण्य-रोदन-जैसी वात है; पर मेरा पक्का विश्वास है कि वही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी वन पड़े, मैं कम-से-कम उंगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूं।"

संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका निषेध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी-कभी अमेरिकासे मिलते रहते हैं, उन्हींमेंसे यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिमसे हर हफ्ते हिन्दुस्तानमें जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उसके तो पढ़नेसे दिलपर बिलकुल जुदा ही असर पड़ता है। यही मालूम होता है, मानो अमेरिकामें तो सिवा बेवकूफोंके कोई भी इन आधुनिक साधनोंका विरोध नहीं करते हैं, जो मनुष्यको उस अन्ध-विश्वाससे मुक्ति प्रदान करते हैं, जो अबतक शरीरको गुलाम बनाकर संसारके सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुखसे मनुष्यको वंचित करके उसके शरीरको निष्प्राण बना देनेकी शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह कर्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके साधारण परिणामके खतरेसे बचकर करनेको प्रोत्साहन देता है। पश्चिमसे आनेवाले केवल उन पत्रोंको मैं 'हरिजन' के पाठकोंके सामने नहीं पेश करता, जिनमें व्यक्तिगत रूपसे इन साधनोंका निषेध होता है। वे तो साधककी दृष्टिसे मेरे लिए उपयोगी हैं। साधारण पाठकोंके लिए उनका मूल्य कम है; पर यह पत्र खासतौरपर एक महत्त्व रखता है; यह एक ऐसे शिक्षकका है; जिसे तीस वर्षका अनुभव है। यह हिन्दुस्तानके उन शिक्षकों और जनता (स्त्री-पुरुष) के लिए खासतौरपर मार्गदर्शक है, जो उस ज्वरके प्रबल प्रवाहमें बहे जा रहे हैं। संतति-नियामक साधनोंके प्रयोगमें शराबसे अनन्त-गुना प्रबल प्रलोभन होता है; पर इस मारक प्रलोभनके कारण वह उस चमकीली शराबकी अपेक्षा अधिक जायज नहीं है। और चूंकि इन दोनोंका प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर इनका विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता। अगर इनके विरोधियोंको अपने कार्यकी पवित्रतामें श्रद्धा है, तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य-रोदनोंमें भी वह बल होता है कि जो मूढ़ जनसमुदायके सुर-में-सुर मिलानेवालेकी आवाजमें नहीं हो सकता; क्योंकि जहां अरण्यमें रोनेवालेकी आवाज़में चिन्तन और मननके अलावा अटूट श्रद्धा होती है, वहां सर्व-साधारणके इस शोरकी जड़में विषय-भोगकी व्यक्तिगत लालसा और अनचाही सन्तति तथा दुखिया माताओंके

प्रति झूठी और निरी भावुक सहानुभूतिके अलावा और कुछ नहीं होता। और इस मामलेमें व्यक्तिगत अनुभववाली दलीलमें तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबीके किसी कार्यमें होती है और सहानुभूतिवाली दलील एक धोखेकी टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चोंके तथा मातृत्वके कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजाएं और हिदायतें हैं। संयम और इन्द्रिय-नियमके कानूनकी जो परवा नहीं करेगा, वह तो एक तरहसे अपनी खुद-कुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियोंका नियमन नहीं कर सकते, तो हम असफलताको न्यौता देते हैं। कायरोंकी तरह हम युद्धसे मुंह मोड़कर जीवनके एकमात्र आनन्दसे अपने-आपको वंचित करते हैं।

हरिजन सेवक,
२७ मार्च १९३७

: १२ :

आश्चर्यजनक, अगर सच है!

खांसाहब अब्दुलग़फ़्फ़ारखां और मैं सवेरे और शाम जब घूमने जाते हैं तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयों पर हुआ करती है, जो सभीके हितके होते हैं। खांसाहब सरहदी इलाक़ोंमें, यहांतक कि काबुल और उसके भी आगे काफ़ी घूमे हैं, और सरहदी कबीलोंके बारेमें उनको बड़ी अच्छी जानकारी है। इसलिए वह अक्सर वहांके सीधे-सादे लोगोंकी आदतों और रस्म-रिवाजोंके बारेमें मुझे बतलाया करते हैं। वह मुझे बताते हैं कि इन लोगोंकी मुख्य खुराक, जो इस सभ्यताकी हवासे अबतक अछूते ही हैं, मक्का और जौ की रोटी और मसूर है। वक्तन-फवक्तन वे छाछ भी ले लिया करते हैं। वे गोश्त खाते हैं, पर बहुत कम। मैंने समझा कि उनकी मशहूर दिलेरीका एक-मात्र कारण उनका खुली हवामें रहना और वहांका अच्छा शक्तिवर्द्धक जलवायु ही है। 'नहीं, सिर्फ़ यही बात नहीं है' खांसाहबने उसी वक्त कहा, 'उनमें जो ताकत व दिलेरी है उसका भेद तो हमें उनके संयमी जीवनमें मिलता है। शादी वे, मर्द व औरतें दोनों ही, पूरी जवानीकी उम्रमें जाकर करते हैं। बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेमको तो वे जानते ही नहीं। शादीसे पहले सहवास करनेकी सजा वहां मौत है। इस तरहका गुनाह करनेवालेकी जान लेनेका उन्हें हक़ है।'

अगर यह संयम या इन्द्रिय-निग्रह वहां इतना व्यापक है, जैसा कि खांसाहब बतलाते हैं, तो इससे हमें हिन्दुस्तानमें एक ऐसा सबक़ मिलता है, जो हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए। मैंने खांसाहबके आगे यह विचार रखा कि उन लोगोंके कदावर और दिलेर होनेका एक बहुत बड़ा सबब अगर उनका संयमी जीवन है, तो मन और शरीरके बीच पूरा सहयोग होना

ही चाहिए; क्योंकि अगर मन विषय-तृप्तिके पीछे पड़ा रहा और शरीर-ने निग्रह किया, तो इससे प्राण-शक्तिका इतना भयंकर नाश होगा कि शरीरमें कुछ भी नहीं बच रहेगा। खांसाहब मान गये कि यह अनुमान ठीक है। उन्होंने कहा कि जहांतक मैं इसकी जांच कर सका हूं, मुझे लगता है कि वे लोग संयमके इतने ज्यादा आदी हो गये हैं कि नौजवान मर्दों और औरतोंका शादीसे पहले विषय-तृप्ति करनेका कभी मन ही नहीं होता। खांसाहबने मुझसे यह भी कहा कि उन इलाकोंकी औरतें क़भी पर्दा नहीं करतीं, वहां झूठी लज्जा नहीं है, औरतें निडर हैं, चाहे जहां आज़ादीसे घूमती हैं और अपनी सम्भाल खुद कर सकती हैं, अपनी इज्ज़त-आबरू बचा सकती हैं, किसी मर्दसे वे अपनी रक्षा नहीं कराना चाहतीं, उन्हें जरूरत भी नहीं। तो भी खांसाहब यह मानते है कि उनका यह संयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धापर आधार नहीं रखता, इसलिए, जब ये पहाड़ोंके रहनेवाले लोग सभ्य या नज़ाकतकी जिन्दगीके सम्पर्कमें आते हैं, तो उनका वह संयम टूट जाता है। सभ्यताके सम्पर्कमें आकर जब वे अपनी पुरानी बात छोड़ देते हैं, तो उन्हें इसके लिए कोई सजा नहीं मिलती और उनकी बेवफाई और व्यवहारको पब्लिक कम या ज्यादा उपेक्षाकी नज़रसे देखती है। इससे ऐसे विचार सामने आ जाते हैं, जिनकी मुझे फिलहाल चर्चा नहीं करनी चाहिए। यह लिखनेका तो अभी मेरा यह मतलब है कि खांसाहबकी तरह जो लोग इन फिरकोंके आदमियोंके बारेमें जानकारी रखते हों, और उनके कथनका समर्थन करते हों, उनसे इसपर और भी रोशनी डलवाई जाय, और मैदानोंमें रहनेवाले नौजवानों और युवतियोंको बतलाया जाय कि संयमका पालन, अगर वह इन पहाड़ी फिरकोंके लिए सचमुच स्वाभाविक चीज है, जैसा कि खांसाहबका खयाल है, तो हम लोगोंके लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए—अगर अच्छे-अच्छे विचारोंको हम अपने विचार-जगत्में बसा लें, और यों ही घुस आनेवाले बाधक विचारों या विषय-विकारोंको जगह न दें। दर असल, अगर सद्‌विचार काफी बड़ी संख्यामें हमारे मनमें बस जायं, तो बाधक विचार वहां ठहर ही नहीं सकते। अवश्य इसमें साहसकी जरूरत

है। आत्म-संयम कायर आदमीको कभी हासिल नहीं होता। आत्म-संयम तो प्रार्थना और उपवास-रूपी जागरूकता और निरन्तर प्रयत्नका सुन्दर फल है। अर्थ-हीन स्तोत्रपाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीरको भूखों मारना उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदयसे निकलती है जिसे कि ईश्वरका श्रद्धा-पूर्वक ज्ञान है; और उपवासका अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म या आहारसे परहेज रखना। मन विविध प्रकारके व्यंजनोंकी ओर दौड़ रहा है और शरीरको भूखों मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत-उपवाससे भी बुरा है।

हरिजन सेवक,
१० अप्रेल १९३७

: १३ :

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले विहार-सरकारने अपने शिक्षा-विभागमें पाठशाला-ओंमें होने वाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमें जांच करवाई थी। जांच-समितिने इस बुराईको शिक्षकों तकमें पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके कारण विद्यार्थियोंके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरने एक सरकुलर द्वारा शिक्षकोंमें पाई जानेवाली ऐसी बुराईका प्रतिकार करनेका हुक्म निकाला था। सरकुलरका जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो—वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे साहित्य भी आया है, जिसमें इस और ऐसी बुराइयोंकी तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि यह प्रायः भारत-भरके तमाम सार्वजनिक और प्राइवेट मदरसोंमें फैल गया है और बराबर बढ़ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वभाविक है तथापि इसकी विरासत हम अनन्त कालसे भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयोंका इलाज ढूंढ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालकोंके संरक्षकपर भी पड़ता है—और शिक्षक बालकोंके संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि 'अगर प्राण-दाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें?' मेरी रायमें जो बुराइयां प्रगट हो चुकती हैं, उनके सम्बन्धमें विभागकी ओरसे बाज़ाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराईके प्रतिकारके लिए काफ़ी न होगा। सर्वसाधारणके मतको इस सम्बन्धमें सुगठित और सुसंस्कृत बनाना इसका एक-मात्र उपाय है; लेकिन इस देशके कई मामलोंमें प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नहीं।

राजनैतिक जीवनमें असहायता या बेबसीकी जिस भावनाका एकच्छत्र राज्य है उसने देशके जीवनके सब क्षेत्रोंपर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराइयां हमारी आंखोंके सामने होती रहती हैं, उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यतापर ही एकान्त ज़ोर देती है, वह इस बुराईको रोकनेके लिए अनुपयोगी ही नहीं है; बल्कि उससे उलटे बुराईको उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओंमें दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, शालाके पाठ्य-क्रमके समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये हैं। बिहार-समितिने 'बालकों-के मनपर धार्मिक प्रतिष्ठाके संस्कार जमाने' की सिफारिश की है; लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बांधे ? अकेले शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते हैं; लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकोंके योग्य चुनावका प्रतीत होता है; मगर शिक्षकोंके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो अबसे कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका काया-पलट—याने शिक्षाको पवित्र कर्त्तव्य मानकर शिक्षकोंका उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथालिकोंमें यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे-जैसे ग़रीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचारमें हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुगम है; लेकिन वह भी उसकी शासन-प्रणालीके आधीन रहकर सम्भव नहीं; जिसमें हर एक चीज़की कीमत आंकी जाती है, और जो दुनिया-भरमें ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालकोंकी नैतिक सुधारणाके प्रति माता-पिताओंकी लापर्वाहीके कारण इस बुराईको रोकना और कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोंको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्यकी इति-श्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामनेका काम बहुत ही विषाद-पूर्ण है; लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयोंका एक रामबाण उपाय है और वह है—आत्म-शुद्धि। बुराईकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममेंसे हर एकको पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते

रहना चाहिए और अपने-आपको ऐसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र मानना चाहिए। हमें यह कहकर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरों-की-सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र अस्तित्वकी चीज़ नहीं है। वह तो एक ही रोगका भयंकर लक्षण है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम विषयकी दृष्टिसे पतित हैं, तो हमें आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पड़ोसियोंके सुधारकी आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरोंके दोषोंके निरीक्षणमें बहुत पटु हो गए हैं और अपने-आपको अत्यन्त निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो इस बातके सत्यको महसूस करते हैं वे इससे छूटें और उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होते तथापि वे बहुत कुछ सम्भवनीय हैं।

हरिजन सेवक,
२७ मई १९३७

: १४ :

बढ़ता हुआ दुराचार

सनातन धर्म कालेज, लाहौरके प्रिंसिपल लिखते हैं :

"इसके साथ में कटिंग और विज्ञप्तियां वगैरह भेज रहा हूं, उन्हें देखनेकी मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। इन काग़जोंसे ही आपको सारी बातका पता चल जायगा। यहां पंजाबमें 'युवक हितकारी संघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एवं अधिकारी-वर्गका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, और बालकोंके सुसंस्कृत माता-पिताओंकी भी दिलचस्पी संघने प्राप्त की है। बिहार के पण्डित सीतारामदासजी इस आन्दोलनके प्रणेता हैं, और इस आन्दोलनके आश्रयदाताओंमें यहांके अनेक प्रतिष्ठित सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं।

"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोमल वयके बालकोंको फंसानेका यह दुराचार भारतके दूसरे भागोंकी अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्तमें ज्यादा है।

"क्या आप कृपा कर 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे अखबारमें लेख या पत्र लिखकर इस बुराईकी तरफ देशका ध्यान आकर्षित करेंगे?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्नके सम्बन्धमें बहुत दिन हुए कि युवकसंघके मन्त्रीने मुझे लिखा था। उनका पत्र आनेपर मैंने डॉ० गोपीचन्दके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उनसे यह मालूम हुआ कि संघके मंत्रीने जो बातें अपने पत्रमें लिखी हैं, वे सब सच्ची हैं; लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था कि इस प्रश्नकी क्या 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्रमें चर्चा करूं। इस दुराचारका मुझे पता था; मगर मुझे इस बातका पता नहीं था कि अखबारोंमें इसकी चर्चा करनेसे कोई लाभ हो सकेगा या नहीं।

यह विश्वास अब भी नहीं है। किन्तु कालेजके प्रिंसिपल साहबने जो प्रार्थना की है उसकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत दूर-दूरतक फैला हुआ है; चूंकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानीसे पकड़में नहीं आ सकता। जहां विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहबके बताये हुए किस्सेसे तो यह प्रगट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियोंको भ्रष्ट करनेके दोषी हैं। बारी जब खुद ही खेतको चर जाय तो फिर किससे रखवारीकी आशा करे? बाइबिलमें कहा है—"नौन जब खुद अलौना हो जाय तब उसे कौन चीज़ नमकीन बना सकती है?"

यह प्रश्न ऐसा है कि इसे न तो कोई जांच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधारका काम है। माता-पिताओंके दिलमें उनके उत्तरदायित्वका भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियोंको शुद्ध स्वच्छ रहन-सहनके निकट संसर्गमें लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षाका आधार-स्तम्भ है, इस विचारका गम्भीरताके साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओंके ट्रस्टियोंको अध्यापकोंके चुनावमें बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए और अध्यापकोंको चुननेके बाद भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं? ये तो मैंने थोड़े-से उपाय बतलाये हैं। इन उपायोंके सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबूमें तो आ ही सकता है।

हरिजन सेवक,

३ मई १९३५

: १५ :

नम्रताकी आवश्यकता

बंगालमें कार्यकर्त्ताओंसे बातचीत करते हुए एक नवयुवकसे मेरा साबका पड़ा, जिसने कहा कि लोग मुझे इसलिए भी मानें कि मैं ब्रह्मचारी हूं। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीनके साथ कही कि मैं देखता रह गया। मैंने मनमें कहा कि यह उन विषयोंकी बातें करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोड़ा है। उसके साथियोंने उसकी बातका खण्डन किया। और जब मैंने उससे जिरह करनी शुरू की तब तो खुद उसने भी कबूल किया कि हां, मेरा दावा नहीं टिक सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो; पर मानसिक पाप ही करता हो, वह ब्रह्मचारी नहीं। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणीको देखकर अविचल नहीं रह सकता वह ब्रह्मचारी नहीं। जो केवल आवश्यकताके वशीभूत होकर अपने शरीरको अपने वशमें रखता है, वह करता तो अच्छी बात है; पर वह ब्रह्मचारी नहीं। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दोंका मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्यका फल तो अद्भुत होता है और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुणका पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते हैं; पर सफल विरले ही होते हैं। जो लोग गेरुए कपड़े पहनकर संन्यासियोंके वेशमें देशमें घूमते-फिरते हैं, वे अक्सर बाजारके मामूली आदमीसे ज्यादा ब्रह्मचारी नहीं होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डींग नहीं हांकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बातपर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइशको, मेरे प्रलोभनोंको तथा मेरे विजयोत्सव और भगीरथ प्रयत्नके होते हुए भी, हो जानेवाले पतनको जानता है। यदि दुनिया उसके पतनको देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट रहता

हैं । अपनी सफलताको वह कंजूसके धनकी तरह छिपाकर रखता है । वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रकट नहीं करता । ऐसा मनुष्य उद्धारकी आशा रख सकता है; परन्तु वह बाबा संन्यासी, जो कि संयमका ककहरा भी नहीं जानता, यह आशा नहीं रख सकता । वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि संन्यासीका वेष नहीं बनाते; पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्यका ढिंढोरा पीटते फिरते हैं और दोनोंको सस्ता बताते हैं तथा अपनेको और अपने सेवा-कार्यको बदनाम करते हैं, उनसे खतरा समझिए ।

जब कि मैंने अपने साबरमती वाले आश्रमके लिए नियम बनाए तो उन्हें मित्रोंके पास सलाह और समालोचनाके लिए भेजा । एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जीको भी भेजी थी । उस प्रतिकी पहुंच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमों में उल्लिखित व्रतोंमें नम्रताका भी एक व्रत होना चाहिए । अपने पत्रमें उन्होंने कहा था कि आजकलके नवयुवकोंमें नम्रताका अभाव पाया जाता है । मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाहके मूल्यको तो मानता हूं और नम्रताकी आवश्यकताको भी सोलहों-आना मानता हूं; पर एक व्रतमें उसको स्थान देना उसके गौरवको कम कर देना है । यह बात तो हमें गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग अहिंसा, ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे वे अवश्य ही नम्र रहेंगे । नम्र-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा । जो सत्यका पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन बात है । दुनिया उसकी विजयपर तो तालियां बजायगी, पर वह उसके पतनका हाल बहुत कम जानती है । सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-ताड़न करने वाला होता है । उसे नम्र बननेकी आवश्यकता है । जो शख्स सारे संसारके साथ, यहांतक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बलपर ऐसा करना किस तरह असम्भव है । जबतक वह अपनेको एक क्षुद्र रज-कण न समझने लगेगा तबतक वह अहिंसाके तत्त्वको नहीं ग्रहण कर सकता । जिस प्रकार उसके प्रेमकी मात्रा बढ़ती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रताकी मात्रा न बढ़ी तो वह किसी कामका नहीं । जो मनुष्य अपनी आंखोंमें तेज लाना चाहता है,

जो स्त्री-मात्रको अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रज-कणसे भी क्षुद्र होना पड़ेगा। उसे एक खाईके किनारे समझिए। ज़रा ही मुंह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मनसे भी अपने गुणोंकी काना-फूसी करनेका साहस नहीं कर सकता; क्योंकि वह नहीं जानता कि इसी अगले क्षणमें क्या होने वाला है? उसके लिए 'अभिमान विनाशके पहले जाता है और मग़रूरी पतनके पहले।' गीतामें सच कहा है—

> विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्ज्यं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और जबतक मनुष्यके मनमें अहंभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वरके दर्शन नहीं हो सकते। यदि वह ईश्वरमें मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् ही जानना चाहिए। इस संघर्ष-पूर्ण जगत्में कौन कहनेका साहस कर सकता है—"मैंने विजय प्राप्त की?" हम नहीं, ईश्वर हमें विजय प्राप्त कराता है।

हमें इन गुणोंका मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए जिससे कि हम सब उनका दावा कर सकें। जो बात भौतिक विषयमें सत्य है वही आध्यात्मिक विषयमें भी सत्य है। यदि एक सांसारिक संग्राममें विजय पानेके लिए योरोपने पिछले युद्धमें, जो कि स्वयं ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड़ लोगोंका बलिदान कर दिया; तब यदि आध्यात्मिक युद्धमें करोड़ों लोगोंको इसके प्रयत्नमें मिट जाना पड़े, जिससे कि संसारके सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है? यह हमारे आधीन है कि हम असीम नम्रताके साथ इस बातका उद्योग करें।

इन उच्च गुणोंकी प्राप्ति ही उनके लिए परिश्रमका पुरस्कार है। जो उसपर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्माका नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करनेकी चीज़ नहीं है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्त्तासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। वे बिक्रीकी चीजें नहीं हैं। जो युवक उनकी तिजारत करनेका साहस करेगा

वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसारके पास कोई बाट ऐसा नहीं है, कोई साधन नहीं है, जिससे कि इन बातोंकी तोल की जा सके। छान-बीन और विश्लेषण की वहां गुज़र नहीं। इसलिए हम कार्यकर्ताओंको चाहिए कि हम उन्हें केवल अपने शुद्धीकरणके लिए प्राप्त करें। हम दुनियासे कह दें कि वह हमारे कार्योंसे हमारी पहचान करे। जो संस्था या आश्रम लोगोंसे सहायता पानेका दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-सांसारिक होना चाहिए जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी-विभाग। सर्वसाधारणको इन कामोंकी योग्यता परखनेका अधिकार है और यदि वे उन्हें पसंद करें तो उनकी सहायता करें। शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकोंमें नेक-नीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्रसे अपरिचित हो, शिक्षकके रूपमें लोगोंसे सहायता पानेका दावा नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओंका हिसाब-किताब ठीक-ठीक रखा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहें तब देख-भाल सकें। इन शर्तोंकी पूर्ति संचालकोंको करनी चाहिए। उनकी सच्चरित्रता लोगोंके आदर और आश्रयके लिए भाररूप न होनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
२५ जून १९३५

: १६ :

सुधारकोंका कर्तव्य

लाहौरके सनातन धर्म कालेजके प्रिंसिपलका निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहां प्रकाशित कर रहा हूं :

"बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी ओर मैं अधिक-से-अधिक ज़ोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े मामलोंकी पुलिसमें रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालतमें ले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे पंजाबमें ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्रके साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारोंकी कुछ कतरनें भेज रहा हूं। अदालतमें कभी-कभी जो एकाध मामले आते हैं, उनमेंसे अत्यन्त बीभत्स किस्से ही अखबारोंमें प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरहसे मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक-बालिकाओंपर इस भयका किस क़दर आतंक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौरमें गुण्डोंने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलोंके फाटकोंपरसे छोटे-छोटे बच्चोंको उठा ले जानेके साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकोंके स्कूलमें जाते और आते वक्त खास इन्तजाम रखना पड़ता है। अदालतमें जो मामले गये हैं, उनकी रिपोर्टोंमें बालकोंके ऊपर किये गए जिन आक्रमणोंका वर्णन आया है अत्यन्त क्रूरता और साहसपूर्ण हैं। ऐसे राक्षसी काम विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषयमें उदासीन है, या वह इस तरहकी लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधोंको संगठित होकर कुचल देनेकी लोगोंमें आत्म-श्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकारके जारी किये गए सरकुलरकी जो नकल इसके साथ मैं

भेज रहा हूं, उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरोंकी उदासीनताके कारण सरकार भी इस विषयमें अपनेको लाचार-सा अनुभव करती है।

आपने 'यंग इंडिया' के ९ सितम्बर १९२६ के तथा २७ जून १९२९ के अंकमें यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकारके अप्राकृतिक व्यभिचारके अपराधोंके सम्बन्धमें सार्वजनिक चर्चा करनेका समय आगया है और इस विषयमें सारे देशमें लोकमत जागृत करनेके लिए अखबारों द्वारा इन जुर्मों-का प्रकाशन ही एक-मात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यन्त आदरके साथ यह बतलाना चाहता हूं कि आजकी मौजूदा स्थितिमें कम-से-कम इतना तो हमें करना ही चाहिए। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचारके विरुद्ध अखबारों द्वारा जोरदार आन्दोलन चलानेके लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज़ उठाकर दूसरे अखबारोंको रास्ता दिखाइए।"

इस बुराईके खिलाफ़ हमें अविश्रान्त लड़ाई लड़नी चाहिए, इस विषयमें तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्रके साथ जो अत्यन्त घृणोत्पा-दक रिपोर्टें भेजी गई थीं, उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातन धर्म कालेजके आचार्यने मेरे जिन लेखोंका उल्लेख किया है, उनमें जिस किस्मके मामलोंकी मैंने चर्चा की थी, उससे ये मामले जुदे ही प्रकारके हैं। वे मामले अध्यापकोंकी अनीतिके थे, जिनमें उन्होंने बालकोंको फुसलाया था। और इन रिपोर्टोंमें अधिकतर जिन मामलोंका वर्णन आया है, उनमें तो गुण्डोंने कोमल वयके बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उनके बाद खून किये जानेके केस हालांकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलोंमें बालक जान-बूझकर अध्यापकोंकी विषय-वासनाके शिकार होते हैं, उनकी अपेक्षा इस प्रकारके मामलोंका इलाज करना सहज है। दोनोंके ही विषयमें सुधारकोंके सतत-जागृत रहने और इस बीभत्स कार्यके सम्बन्धमें लोगोंकी अन्तरात्मा जगानेकी आवश्यकता है। पंजाबमें चूंकि इस किस्मके अपराध बहुत अधिक होने लगे हैं, इसलिए वहांके

नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्म का भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकोंको फुसलाकर फंसाने वाले या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करने वाले अपराधियोंके पंजेसे इस पंचनद प्रदेशके, कोमल वयस्क युवकोंको बचानेके उपायका आयोजन करें। अपराधियोंकी निंदा करने वाले प्रस्ताव पास करनेसे कुछ भी होने-हवानेका नहीं। पाप-मात्र भिन्न-भिन्न प्रकारके रोग हैं और सुधारकोंको उन्हें ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलोंको सार्वजनिक अपराध समझनेका अपना काम मुल्तवी रखेगी; किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओंके मूल कारण ढूंढकर उन्हें दूर करनेकी होती ही नहीं। यह तो सुधारकोंका खास अधिकार है। और अगर समाजमें सदाचारके विषयकी भावना और आग्रह न बढ़ा, तो अखबारोंमें दुनिया-भरके लेख लिखे जायं तो भी ऐसे अपराध और-और बढ़ते ही जायंगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्तेपर जाने वाले लोगोंकी नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारोंको—खासकर उन भागोंको जिनमें ऐसे-ऐसे दुराचारोंके विरुद्ध जोशसे भरी हुई नसीहतें होती हैं—शायद ही कभी पढ़ते हों। इसलिए मुझे भी यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातन धर्म कालेजके प्रिन्सिपल (यदि वे उनमेंसे एक हों तो) जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकोंको एकत्रित करें और इस बुराईको दूर करनेके लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथमें लें।

हरिजन सेवक,
२ नवम्बर १९३५

: १७ :

नवयुवकोंसे !

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकोंकी यह आदत-सी पड़ गई है कि बड़े-बड़े जो-कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिए। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उसके ऐसा माननेका बिलकुल कोई कारण ही नहीं है; लेकिन देशके युवकोंको इस बातसे आगाह ज़रूर करना चाहता हूं कि बड़े-बड़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरेक बातको सिर्फ इसी कारण माननेसे इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ोंने कहा है। अक्सर बुद्धिकी बात बच्चों तकके मुंहसे जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा बड़े-बूढ़ोंके मुंहसे निकल जाती है। स्वर्णनियम तो यही है कि हरेक बातको बुद्धि और अनुभवकी कसौटीपर कसा जाय, फिर वह चाहे किसीकी कही या बताई हुई क्यों न हो। कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रहकी बातपर मैं अब आता हूं। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासनाकी पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्तव्य है; जैसे वैध रूपमें लिये हुए क़र्ज़को चुकाना हमारा कर्तव्य है; और अगर हम ऐसा न करें तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छा-को सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे पृथक् माना जाता है और सन्तति-निग्रहके लिए कृत्रिम-साधनोंके समर्थकोंका कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुषको बच्चे पैदा करनेकी इच्छा न हो तबतक गर्भ-धारण नहीं होने देना चाहिए। मैं बड़े साहसके साथ यह कहता हूं कि यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका कहीं भी प्रचार करना बहुत खतरनाक है; और हिन्दुस्तान-जैसे देशके लिए तो, यहां मध्य-श्रेणीके पुरुष अपनी जननेन्द्रियका दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व ही खो बैठे हैं; यह और भी बुरा है। अगर विषयेच्छाकी पूर्ति कर्तव्य हो, तब तो जिस अप्राकृतिक व्यभि-चारके बारेमें कुछ समय पहले मैंने लिखा था उसे तथा कामपूर्तिके कुछ

अन्य उपायोंको भी ग्रहण करना होगा। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि बड़े-बड़े आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड़ रहे हैं जिन्हें आम तौरपर वैषयिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस बातसे पाठकोंको कुछ ठेस लगे; लेकिन अगर किसी तरह इसपर प्रतिष्ठाकी छाप लग जाय तो बालक-बालिकाओंमें अप्राकृतिक व्यभिचारका रोग बुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे कोई खास फर्क नहीं है, जिन्हें लोगोंने अभीतक अपनी विषयेच्छा-पूर्तिके लिए अपनाया है, और जिनसे ऐसे कुपरिणाम आये हैं कि बहुत कम लोग उनसे परिचित हैं। स्कूली लड़के-लड़कियोंमें गुप्त व्यभिचारने क्या तूफ़ान मचाया है, यह मैं जानता हूं। विज्ञानके नामपर सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंके प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओंके नामसे उनके छपानेसे स्थिति आज और भी पेचीदा हो गई है और सामाजिक जीवनकी शुद्धताके लिए सुधारकोंका काम बहुत-कुछ सम्भव-सा हो गया है। पाठकोंको यह बताकर मैं अपने-पर किये गए किसी विश्वासको भंग नहीं कर रहा हूं कि स्कूल-कालिजोंमें ऐसी अविवाहित जवान लड़कियां भी हैं, जो अपनी पढ़ाईके साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साहित्य व मासिक पत्रोंको बड़े चावसे पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनोंको अपने साथ रखती हैं। इन साधनोंको विवाहिता स्त्रियोंतक ही सीमित रखना असम्भव है। और, विवाहकी पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जबकि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्तिको छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासनाकी पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि जो विद्वान् स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोंके पक्षमें बड़ी लगनके साथ प्रचार-कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वासके साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियोंकी रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध बच्चोंका भार सम्भालना पड़ता है, देशके युवकोंकी ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति ही नहीं हो सकती। जिन्हें अपने बच्चोंकी संख्या सीमित करनेकी जरूरत है, उनतक तो आसानी से वे पहुंच भी नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे यहांकी गरीब स्त्रियोंको पश्चिमी-

स्त्रियोंकी भांति ज्ञान या शिक्षण कहां प्राप्त है? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणीकी स्त्रियोंकी ओरसे भी यह प्रचार-कार्य नहीं हो रहा है; क्योंकि इस ज्ञानकी उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि ग़रीब लोगोंको है।

इस प्रचार-कार्यसे सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्शको छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्शको अपनाना है, जो अगर अमलमें लाया गया तो जातिका नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रोंने व्यर्थ वीर्य-नाशको जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अन्ध-विश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पासके सबसे बढ़िया बीजको बंजर जमीनमें बोवे, या बढ़िया खादसे खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेतके मालिकको इस शर्तपर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो तो उसे हम क्या कहेंगे? परमेश्वरने कृपा करके पुरुषको तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्रीको ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भू-मंडलमें कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालतमें मनुष्य अपनी बहुमूल्य सम्पत्तिको व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पासके बढ़िया-से-बढ़िया हीरे-जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओंकी वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार-सम्हाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खताकी ही दोषी है, जो अपने जीवन-उत्पादक क्षेत्रमें जान-बूझकर व्यर्थ जाने देनेके विचारसे बीजको ग्रहण करे। दोनों ही उन्हें मिले हुए गुणोंका दुरुपयोग करनेके दोषी होंगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायंगे। विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है, इसमें शर्मकी कोई बात नहीं है; किन्तु यह है सन्तानोत्पत्तिके लिए। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवताके प्रति पाप होगा। सन्तति-निग्रहके कृत्रिम उपाय किसी-न-किसी रूपमें पहले भी थे और बादमें भी रहेंगे; परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचारको सद्‌गुण कहकर उसकी प्रशंसा करनेका काम हमारे ही युगके लिए सुरक्षित रखा हुआ था। कृत्रिम साधनोंके हिमायती हिन्दुस्तानके नौजवानोंकी जो सबसे बड़ी हानि कर रहे हैं वह

उनके दिमाग़में ऐसी विचार-धारा भर देता है, जो मेरे खयालमें, ग़लत है। भारतके नौजवान स्त्री-पुरुषोंका भविष्य उनके अपने ही हाथोंमें है। उन्हें चाहिए कि इस झूठे प्रचारसे सावधान हो जायं और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वरने उन्हें दी है, उसकी रक्षा करें, और जब वे उसका उपयोग करना चाहें तो सिर्फ उसी उद्देश्यसे करें कि जिसके लिए वह उन्हें दिया गया है।

हरिजन सेवक,
२८ मार्च १९३६

: १८ :

भ्रष्टताकी ओर

एक युवकने लिखा है :

"संसारका काया-कल्प करनेके लिए आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय; पर मेरी समझमें ठीक-ठीक नहीं आ रहा है। आखिर इस सच्चरित्रतासे आपका क्या अभिप्राय है? यह केवल स्त्री-पुरुषतक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्यके समस्त व्यवहारोंसे है? मुझे तो शक है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्ध तक ही सीमित है, क्योंकि आप अपने पूंजीपति और जमींदार दोस्तोंको तो कभी-कभी यह बतानेका कष्ट नहीं करते कि वे कैसे अन्याय-पूर्वक मजदूरों और किसानों-का पेट काट-काटकर अपनी जेब भरते रहते हैं। वहां बेचारे युवक और युवतियोंकी चारित्रिक गलतियों पर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते ही नहीं; और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रतका आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवकोंके हृदयको जानते हैं। मैं किसीका प्रतिनिधि होनेका दावा नहीं करता; पर एक युवककी हैसियतसे ही मैं कहता हूं कि आपका यह दावा ग़लत है। मालूम होता है; आपको पता ही नहीं कि आजकलके मध्यम-वर्गके युवक-को किन परिस्थितियोंमेंसे गुजरना पड़ता है। बेकारीकी यह भयंकर चिंता, आदमीको पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढियां और परम्पराएं, और सहशिक्षाका यह प्रलोभनकारी विघातक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनताका यह संघर्ष उसकी सारी शक्तियोंको चूर-चूर कर रहा है और वह हार कर लाचार हो रहा है। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि इन बेचारोंको थोड़ी रहमकी नजरसे देखिए, दया कीजिए। उन्हें कृपया अपने संन्यासाश्रमके नीति-

शास्त्रकी कसौटी पर न कसिये। मेरा तो खयाल है कि अगर दोनोंकी मर्जी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री-पुरुष, चाहे वे पति-पत्नी न भी हों तो भी आखिर जो चाहें कर सकते हैं। मेरी रायमें तो वह सदाचार ही होगा। और जबसे सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका आविष्कार हुआ है, संयोग-व्यवस्थाकी दृष्टिसे विवाह-प्रथाका नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न हो गया है। अब तो केवल बच्चोंके पालन-पोषण और रक्षा-भरके लिए उसका उपयोग रह गया है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिलको चोट पहुंचेगी; पर मैं प्रार्थना करता हूं कि आजकलके युवकोंको भला-बुरा कहनेसे पहले कृपया अपनी तरुणाईको न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे। कितना विषय-भोग करते थे? मैथुनके प्रति आपकी घृणा शायद आपकी इस अतिका ही परिणाम है। इसलिए अब आप ऐसे संन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप-ही-पाप नज़र आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा तो खयाल है कि आजकलके कई युवक इस विषयमें ज़रूर आपसे बेहतर साबित होंगे।"

इस तरहके अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवकसे मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे; पर इतने थोड़े समयमें ही जहांतक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी वह एक गम्भीर परिस्थितिमेंसे ही गुज़र रहा है। ऊपरका उद्धरण तो उसके एक लम्बे पत्रका अंश है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं, जिन्हें अगर मैं चाहूं तो प्रकाशित कर सकता हूं, और उसे प्रसन्नता ही होगी; पर मैंने ऊपर जो अंश दिया है वह कितने ही युवकोंके विचारों और प्रवृत्तियोंको प्रगट करता है।

बेशक युवक और युवतियोंसे मुझे अवश्य सहानुभूति है। अपनी जवानीके दिनोंकी भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे तो देशके युवकोंपर श्रद्धा है, इसीलिए तो उनकी समस्याओंपर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिए तो नीति, सदाचार और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरहसे सदाचारी हो; पर धार्मिक न हो, तो उसका जीवन बालू-

पर खड़े किये गये मकानकी तरह समझिए। इसी तरह भ्रष्ट चरित्रका धर्माचरण भी दूसरोंको दिखाने-भरके लिए और साम्प्रदायिक उपद्रवोंका कारण होता है। नीतिमें सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य-जातिने आजतक सदाचारके जितने नियमोंका पालन किया है वे सब इन तीन सर्व-प्रधान गुणोंसे सम्बन्धित या प्राप्त हो सकते हैं। और अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य सत्यसे प्राप्त हो सकते हैं, जो मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

संयम-हीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रियोंको निरंकुश छोड़ देने वालेका जीवन कर्णधार-हीन नावके समान है, जो निश्चय ही पहली चट्टानसे ही टकराकर चूर-चूर हो जायगी। इसलिए मैं सदैवसे संयम और ब्रह्मचर्यपर इतना जोर दे रहा हूं। पत्र-प्रेषकके इस कथनमें यहांतक तो जरूर सत्य है कि इन सन्तति-निरोधक साधनोंने स्त्री-पुरुषोंकी सम्बन्ध-विषयक समाजकी कल्पनाओंको काफी बदल दिया है; पर अगर संयोगको नीति-युक्त बनानेके लिए स्त्री-पुरुषकी—चाहे वे पति-पत्नी हों या न भी हों—केवल पारस्परिक अनुमति ही का होना काफ़ी हो, तब तो इसी युक्तिके अनुसार समान लिंग वाले दो व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध भी नीतियुक्त बन जायगा और संयोग-व्यवस्था-सम्बन्धी सारी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी। और तब तो निस्संदेह देशके युवकोंके भाग्यमें सिवा पराभव और दुर्दशाके और कुछ है ही नहीं। हिन्दुस्तानमें ऐसे कई पुरुष और स्त्रियां हैं, जो विषय-वासनामें बुरी तरह फंसे हुए हैं; पर अगर उससे मुक्त हो सकें तो वे बहुत खुश हों। विषय-वासना संसारके किसी भी नशेसे अधिक मादक है। यह आशा करना बेकार है कि सन्तति-निरोधक साधनोंका व्यवहार सन्तति-नियमन तक ही सीमिति रहेगा। हमारे जीवनके शुद्ध, सभ्य रहनेकी तभीतक आशा की जा सकती है, जबतक कि संयोगसे प्रजननका निश्चित सम्बन्ध है। यह मान लेनेपर अप्राकृतिक मैथुन तो बिलकुल उड़ जाता है, और कुछ हदतक पर-स्त्री-गमनपर भी नियन्त्रण हो जाता है। संयोगको उसके स्वाभाविक परिणामसे अलग करनेका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि समाजसे स्त्री-पुरुषकी

संयोग-सम्वन्वी सारी मर्यादा उठ जायगी और अगर सद्भाग्यसे अप्राकृतिक व्यभिचारको प्रत्यक्ष प्रोत्साहन न भी मिला तो भी समाजमें निर्गुण व्यभिचार फैले विना नहीं रहेगा।

संयोग-समस्या पर विचार करते समय अपना व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकोंने मेरी 'आत्म-कथा' नहीं पढ़ी है, वे मेरी विषय-लोलुपताके विषयमें कहीं इस पत्र-प्रेषककी तरह अपने विचार न वना लें। सवसे पहली वात तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊं, मेरी विषय-वृत्ति अपनी पत्नीतक ही सीमिति थी। फिर मैं एक वहुत वड़े परिवारमें रहता था, जिससे रातके कुछ घंटोंको छोड़कर हमें एकांत कभी मिलता ही न था। दूसरे तेईस वर्षकी अवस्थामें ही मैं इतना समझने लायक हो गया था कि महज़ भोगके लिए संयोग करना निरी वेवकूफी है और सन् १८८६ में, यानी जव मैं तीस सालका था, पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेका मैं निश्चय कर चुका था। मुझे संन्यासी कहना ग़लत होगा। मेरे जीवनके नियमात्मक आदर्श तो सारी मानवताके लिए ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों मेरा जीवन-विकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक कदम मैंने पूरी तरह सोच-समझकर गहरे मननके वाद रखा है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे प्राप्त हुए हैं, और अपने सार्वजनिक कर्तव्योंको पूरा करनेके लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रीकामें एक गृहस्थ, एक वैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञकी हैसियतसे मुझे जन-समूहसे पृथक् जीवन व्यतीत करना पड़ा है। उस जीवनमें अपने उपर्युक्त कर्त्तव्योंके पालनार्थ मेरे लिए यह ज़रूरी हो गया है कि मैं कठोर संयमका पालन करूं तथा अपने देश-भाइयों और यूरोप-निवासियोंके साथ मनुष्यकी हैसियतसे व्यवहार करते हुए सत्य और अहिंसाका उतनी ही कड़ाईसे पालन करूं।

मैं एक मामूली आदमी हूं। मुझमें जरा भी विवेक नहीं, और योग्यता तो मामूलीसे कम है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्यके व्रतके पालनमें भी कोई वधाई देने लायक वात नहीं; क्योंकि ये तो वर्षोंके निरन्तर प्रयाससे

मेरे लिए साध्य हुआ है। हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धासे चलें। श्रद्धाहीन कार्य अतल खाईकी थाह लेनेका प्रयत्न करनेकी तरह है।

हरिजन सेवक,
३ अक्तूबर १९३६

: १६ :

एक युवककी कठिनाई

नवयुवकोंके लिए मैंने 'हरिजन' में जो लेख लिखा था, उसपर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मनमें उठे एक प्रश्नका उत्तर चाहता है। यों गुमनाम पत्रोंपर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है; लेकिन जब कोई सारयुक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमें पूछी गई है, तो कभी-कभी मैं इस नियमको तोड़ भी देता हूं।

पत्र हिन्दीमें है और कुछ लम्बा है। उसका सारांश यह है—

"आपके लेखोंको पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकोंके स्वभावको कहांतक समझते हैं। जो बात आपके लिए सम्भव हो गई है वह सब युवकोंके लिए सम्भव नहीं है। मेरा विवाह हो चुका है। इतनेपर भी मैं स्वयं तो संयम कर सकता हूं; लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। बच्चे पैदा हों, यह तो वह नहीं चाहती; लेकिन विषयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालतमें, मैं क्या करूं? क्या यह मेरा फर्ज नहीं है कि मैं उसकी भोगेच्छाको तृप्त करूं? दूसरे जरियेसे वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझमें नहीं है। फिर अखबारोंमें जो पढ़ता रहा हूं, उससे मालूम पड़ता है कि विवाह-सम्बन्ध कराने और नव-दम्पतियोंको आशीर्वाद देनेमें भी आपको कोई आपत्ति नहीं है। यह तो आप अवश्य जानते होंगे, या आपको जानना चाहिए कि वे सब उस ऊंचे उद्देश्यसे ही नहीं होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखकका कहना ठीक है। विवाहके लिए उम्र, आर्थिक स्थिति आदिकी एक कसौटी मैंने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते हैं, मैं उनकी मंगल-कामना करता हूं। इतने विवाहोंमें मैं शुभ-कामना करता हूं, इससे सम्भवतः यही प्रकट होता है कि देशके युवकोंको इस हद

तक मैं जानता हूं कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहें तो मैं वैसा कर सकता हूं।

इस भाईका मामला मानो इस तरहका एक नमूना है जिसके कारण यह सहानुभूतिका पात्र है; लेकिन संयोगका एक-मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकारसे नई खोज है। इस नियमको जानता तो मैं पहलेसे था; लेकिन जितना चाहिए उतना महत्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभीतक मैं इसे पवित्र इच्छा-मात्र समझता था। लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवनका ऐसा मौलिक विधान मानता हूं कि यदि इसके महत्वको पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाजमें इस नियमको उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा; क्योंकि मेरे लिए तो यह जाज्वल्यमान विधान है। जब हम इसको भंग करते हैं, तो उसके दण्डस्वरूप बहुत-कुछ भुगतना पड़ता है। पत्र-प्रेपक युवक यदि इसके उस महत्त्वको समझ जाय, जिसका कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता है और यदि उसे अपनेमें विश्वास एवं अपनी पत्नीके लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नीको भी अपने विचारोंका बना लेगा। उसका यह कहना कि मैं स्वयं संयम कर सकता हूं क्या सच है? क्या उसने अपनी पाशविक वासनाओंको जन-सेवा जैसी किसी ऊंची भावनामें परिणत कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे उसकी पत्नीकी विषय-भावनाको प्रोत्साहन मिले? उसे जानना चाहिए कि हिन्दू-शास्त्रानुसार आठ तरहके सहवास माने गए हैं, जिनमें संकेतों द्वारा विषय-प्रवृत्तिको प्रेरित करना भी शामिल है। क्या वह इससे मुक्त है? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिलसे यह चाहता हो कि उसकी पत्नीमें भी विषय-वासना न रहे तो वह उसे शुद्धतम प्रेमसे सराबोर करे, उसे यह नियम समझावे, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बगैर सहवास करनेसे शारीरिक हानि होती है वह उसे समझावे और वीर्य-रक्षा-का महत्व बतलावे। अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नीको अच्छे कामोंकी ओर प्रवृत्त करके उनमें उसे लगाये रखे और उसकी विषय-वृत्तिको शांत करनेके लिए उसके भोजन, व्यायाम आदिको नियमित करनेका यत्न

करे। और इस सबसे बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्तिका व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वासको वह अपनी सहचरी पत्नीमें भी पैदा करनेकी कोशिश करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रतका तब-तक पालन नहीं हो सकता जबतक कि ईश्वरमें, जो कि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवनमें ईश्वरका कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वरमें अडिग आस्था रखनेकी आवश्यकताके बिना ही सर्वोच्च जीवनतक पहुंचनेपर ज़ोर दिया जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता क़बूल करता हूं कि जो अपनेसे ऊंची किसी दैवी-शक्तिमें विश्वास नहीं रखते, या उसकी ज़रूरत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञानपर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्वका संचालन होता है, उस शाश्वत नियममें अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वाससे विहीन व्यक्ति तो समुद्रसे अलग आ पड़नेवाली उस बूंदके समान है, जो नष्ट होकर ही रहती है; परन्तु जो बूंद समुद्रमें ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धिमें योग देती है और हमें प्राण-प्रद वायु पहुंचानेका सम्मान उसे प्राप्त होता है।

हरिजन सेवक,
२४ अप्रेल १९३७

: २० :

विद्यार्थियों के लिए

"'हरिजन' के पिछले एक अंकमें आपने 'एक युवककी कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्धमें नम्रता-पूर्वक आपको यह लिख रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थीके साथ न्याय नहीं किया। यह प्रश्न आसानीसे हल होनेवाला नहीं। उसके सवालका आपने जो जवाब दिया है, वह संदिग्ध और सामान्य रायका है। आपने विद्यार्थियोंसे यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठाका खयाल छोड़कर साधारण मजदूरोंकी तरह बन जायं। यह सब सिद्धांतकी बातें आदमीको कुछ रास्ता नहीं सुझातीं और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमीको शोभा देती हैं। इस प्रश्नपर आप अधिक विस्तारके साथ विचार करनेकी कृपा करें और नीचे में जो उदाहरण दे रहा हूं, उसमें क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसील-वार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दें।

मैं लखनऊ-यूनिवर्सिटीमें एम० ए० का विद्यार्थी हूं। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है। मेरी उम्र करीबन २१ सालकी है। मैं विद्याका प्रेमी हूं और मेरी यह इच्छा है कि जीवनमें जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूं, करूं। आपका बताया हुआ जीवनका आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीनेमें मैं एम० ए० फाइनलकी परीक्षा दे दूंगा और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायगी। इसके बाद मुझे 'जीवनमें प्रवेश' करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नीके अलावा ४ भाइयों, (मुझसे सब छोटे हैं, और एककी शादी भी हो चुकी है) २ बहनों और माता-पिताका पोषण करना है। हमारे पास कोई पूंजीका साधन नहीं है। जमीन है; पर बहुत ही थोड़ी।

अपने भाई-बहनोंकी शिक्षाके लिए क्या करूं? फिर बहनोंकी शादी

भी तो जल्दी करनी है। इस सबके अलावा घर-भरके लिए अन्न और वस्त्र कहांसे लाकर जुटाऊंगा ?

मुझे मौज व टीमटामसे रहनेका मोह नहीं है। मैं और मेरे आश्रित-जन अच्छा निरोगी जीवन बिता सकें, और वक्त-ज़रूरतका काम अच्छी तरह चलता जाय, तो इतनेसे मुझे संतोष है। दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक कपड़े मिलते जायं, बस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसेके बारेमें मैं ईमानदारीके साथ रहना चाहता हूं। भारी सूद लेकर या शरीर बेचकर मुझे रोज़ी नहीं कमानी है। देश-सेवा करनेकी भी मुझे इच्छा है। अपने इस लेखमें आपने जो शर्तें रखी हैं, इन्हें पूरा करनेके लिए मैं तैयार हूं।

पर मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं ? शुरुआत कहां और कैसे की जाय ? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मैं सूत कातनेका विचार करता हूं; पर कातना सीखें कैसे, और उस सूतका क्या होगा, इसका भी मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियोंमें मैं पड़ा हूं, उनमें आप मुझे क्या सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन काममें लानेकी सलाह देंगे ? संयम और ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास है; पर ब्रह्मचारी बननेमें मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयमकी सिद्धि प्राप्त होनेके पूर्व यदि मैं कृत्रिम साधनोंका उपयोग नहीं करूंगा, तो मेरी स्त्रीके कई बच्चे पैदा हो जायंगे और इस तरह बैठे ठाले मैं आर्थिक बरबादी मोल ले लूंगा। और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्रीसे, उसके स्वाभाविक भावना-विकासमें, कड़े संयमका पालन कराना बिलकुल ही उचित नहीं। आखिरकार साधारण स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें विषय-भोगके लिए तो स्थान है ही। मैं उसमें अपवाद-रूप नहीं हूं। और मेरी स्त्रीको, आपके 'ब्रह्मचर्य', 'विषय-सेवनके खतरे' आदि विषयोंके महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ने व समझनेका मौका नहीं मिला, इसलिए वह इससे भी कम तैयार है।

मुझे अफसोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा हो गया है; पर मैं संक्षेपमें

लिखकर इतनी स्पष्टताके साथ अपने विचार ज़ाहिर नहीं कर सकता था।

इस पत्रका आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशीसे कर सकते हैं।"

यह पत्र मुझे फ़रवरीके अन्तमें मिला था; पर जवाब इसका मैं अब लिख सका हूं। इसमें ऐसे महत्वके प्रश्न उठाये गये हैं कि हर एक-की चर्चाके लिए इस अखबारके दो-दो कालम चाहिएं; पर मैं संक्षेपमें ही जवाब दूंगा।

इस विद्यार्थीने जो कठिनाइयां बताई हैं, वे देखनेमें गम्भीर मालूम होती हैं; पर वे उसकी खुदकी पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयोंके नाम निर्देश भरसे ही जान लेना चाहिए कि इस विद्यार्थीकी और अपने देशकी शिक्षा-पद्धतिकी स्थिति कितनी खोटी है। यह पद्धति शिक्षाको केवल बाज़ार‌में, बेचकर पैसा पैदा करनेकी चीज़ बना देती है। मेरी दृष्टिसे शिक्षाका उद्देश्य बहुत ऊंचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपनेको करोड़ों आदमियोंमें-से एक माने, तो वह देखेगा कि वह अपनी डिगरीमें जो आशा रखता है, वह करोड़ों युवक और युवतियोंसे पूरी नहीं हो सकती। अपने पत्रमें उसने जिन सम्बन्धियोंका ज़िक्र किया है उनकी परवरिशके लिए वह क्यों जवाबदार बने? बड़ी उम्रके आदमी अच्छे मज़बूत शरीरके हों, तो वे अपनी आजीविकाके लिए मेहनत-मजूरी क्यों न करें? एक उद्योगी मधुमक्खीके पीछे—भले ही वह नर हो—बहुत-सी आलसी मधु-मक्खियोंका रखना ग़लत तरीक़ा है।

इस विद्यार्थीकी उलझनका इलाज, उसने जो बहुत-सी चीज़ें सीखी हैं, उनके भूल जानेमें है। उसे शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचार बदल देने चाहिएं। अपनी बहनोंको वह ऐसी शिक्षा क्यों दे, जिसपर इतना ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े? वे कोई उद्योग-धन्धा वैज्ञानिक रीतिसे सीखकर अपनी बुद्धिका विकास कर सकती हैं। जिस क्षण वे शरीरके विकासके साथ-साथ मनका विकास कर लेंगी, अगर वे ऐसा करेंगी, उसी क्षण वे अपनेको समाजका शोषण करने वाली नहीं; किन्तु सेविकायें समझना

सीखेंगी, तो उनके हृदयका अर्थात् आत्माका भी विकास होगा। और वे अपने भाईके साथ आजीविकाके लिए काम करनेमें समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखनेवाले विद्यार्थीने अपनी वहनोंके व्याहका उल्लेख किया है। उसकी भी यहां चर्चा कर लूं। शादी 'जल्दी' होगी ऐसा लिखनेका क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता। २० सालकी उम्र न हो जाय, तवतक उनकी शादी करनेकी ज़रूरत ही नहीं और अगर वह अपने जीवनका सारा क्रम वदल लेगा तो वह अपनी वहनोंको अपना-अपना वर खुद ढूंढ़ लेने देगा; और विवाह-संस्कारमें ५) रुपयेसे अधिक खर्च होना ही नहीं चाहिए। मैं ऐसे कितने ही विवाहोंमें उपस्थित रहा हूं, और उनमें उन लड़कियोंके पति या उनके वड़े-बूढ़े खासी अच्छी स्थितिके ग्रेजुएट थे।

कातना कहां और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देखकर करुणा आती है। लखनऊमें वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखाने-वाले उसे वहां कई युवक मिल सकते हैं; पर उसे अकेला कातना सीख कर वैठे रहनेकी ज़रूरत नहीं, हालांकि सूत कातना भी पूरे समयका धन्धा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषोंको पर्याप्त आजीविका दे सकनेवाला उद्योग वनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है, उसके वाद वाक़ीका सव यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अव सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंके सम्वन्धमें यहां भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्रीकी वुद्धिको जिस तरह आंक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे तो ज़रा भी शंका नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियोंकी तरह है, तो पतिके संयमके अनुकूल वह सहल हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मनसे पूछकर देखे कि उसके मनमें पर्याप्त संयम है या नहीं? मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे तो सव यही वताते हैं कि संयम-शक्तिका अभाव स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें ही अधिक होता है; पर इस विद्यार्थीको अपनी संयम रखनेकी शक्ति कम समझकर उसे हिसाव-मेंसे निकाल देनेकी ज़रूरत नहीं। उसे वड़े कुटुम्वकी सम्भावनाका मर्दानगीके साथ सामना करना चाहिए, और उस परिवारके पालन-पोषण

: २१ :

विद्यार्थियोंकी दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी ज़िम्मेदारीका पूरा खयाल है, लिखती हैं:

"जबतक हमारे बच्चे वीर्यकी रक्षा करना नहीं सीखते, तबतक हिन्दुस्तानको जैसे आदमियोंकी ज़रूरत है, वैसे कभी नहीं मिल सकते। हिन्दुस्तानमें कोई १६ वर्षों तक, लड़कोंके स्कूलोंका भार मुझपर रहा है। यह देखकर रुलाई आती है कि हमारे बहुतसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लड़के स्कूलकी पढ़ाई शुरू करते हैं जोश, ताकत और उम्मीदोंसे भरकर; लेकिन खत्म करते हैं शरीरसे निकम्मे बनकर। गिनकर सैकड़ों बार मैंने देखा है कि इसके कारणका पता ठेठ वीर्य-नाश, अप्राकृतिक कर्म या बाल-विवाहमें ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लड़कोंके नाम हैं। ये अप्राकृतिक कर्मके दोषी हैं और इनमेंसे एक भी १३ सालसे अधिक का नहीं है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालतका होना ग़लत मानेंगे; लेकिन अगर सही तरीक़ोंसे काम लिया जाय तो व्याधिका पता तुरन्त ही लग जायगा और क़रीब-क़रीब हमेशा ही लड़के अपना गुनाह क़बूल कर लेंगे। इनमेंसे अधिक लड़के कहते हैं कि वह ऐब उन्होंने स्याने आदमियों, कभी-कभी अपने सम्बन्धियोंसे ही सीखा है।"

यह कोई खयाली तसवीर नहीं है। यह वह सचाई है, जिसे जानने वाले स्कूलोंके कितने-एक मास्टर दबा जाते हैं। मैं इसे पहलेसे जानता था। आज कोई आठ साल हुए, दिल्लीके किसी स्कूलमास्टरने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके इलाजके बारेमें अबतक खानगीमें ही मैं बातें करता पाया हूं और चुप रहा हूं। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान-भरमें ही परिमित नहीं है; मगर बाल-विवाहके पापके कारण हमपर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पड़ता है। इस बहुत ही नाजुक और मुश्किल

सवालकी आम चर्चा करना जरूरी हो गया है; क्योंकि अबसे कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दतासे स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी बातोंपर विचार करना ग़ैर-मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रोंमें भी इस-पर बहस होते देखते हैं।

संभोगको देह और दिमाग़की तन्दुरुस्तीके लिए फायदेमन्द, नैतिक, ज़रूरी और स्वाभाविक समझनेकी प्रथाने इस पापकी वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषोंके गर्भ-निरोधक साधनोंके स्वच्छन्द व्यवहारके समर्थनने इस काम-वासनाके कीड़ोंकी वृद्धिके लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है। कमसिन लड़कोंके नाजुक और संग्राहक दिमाग़ ऐसे नतीजे बहुत जल्द निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छाएं अच्छी और उचित हैं। इस मारक पापके प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी; बल्कि पापके बराबर, उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते हैं। मेरी समझमें, सामाजिक वातावरणको पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह-को और कुछ नहीं रोक सकता, विषय-भोगके खयालोंसे भरे हुए वातावरणका अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देशके विद्यार्थियोंके मनपर बिना पड़े रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवनकी परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घरकी रचना, कितने एक सामाजिक रिवाज, सबका एक ही असर होता है, वह है काम-वासनाकी वृद्धि। छोटे लड़कोंके लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्तिका पता लग गया है, इसके जोरको रोकना ग़ैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाजोंसे काम नहीं चलनेका। यदि नई पीढ़ीके प्रति वे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहते हैं तो बड़ोंको पहले अपनेसे ही यह सुधार शुरू करना होगा।

हरिजन सेवक,
३ अप्रेल १९३३

ब्रह्मचर्यपर नया प्रकाश

अव एक नई वात आप लोगोंसे कहना चाहता हूं। सोचा था कि विनोवा सुनायें; पर अव समय है तो स्वयं मैं कहता हूं। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी वात सवके साथ वांट लेता हूं। वातका आरम्भ तो वहुत वर्षों पुराना है। मैं जुलू-युद्धमें गया था। देखो, ईश्वरका खेल इसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगत्‌की सेवा करनी है, उसके लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पतिको भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलव यह था कि उन्हें प्रजोत्पादन-क्रियामें नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। इसलिए मैंने ब्रह्मचर्यका आदर्श छगनलाल आदिके सामने रखा। उस वक्त तो मैं विलकुल जवान था। और जवान तो सवकुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूं कि आप सव ब्रह्मचारी वनें तो क्या वह होनेवाली वात है? वह तो एक आदर्श है, इसलिए मैं तो विवाह भी करा देता हूं। एक आदर्श देते हुए भी यह तो जानता ही हूं कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक-दूसरेके विरोधी हैं, ऐसा मेरा खयाल रहा।

पर उस दिन विनोवा मेरे पास एक उलझन लेकर आये। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी क़ीमत मैं पहले नहीं जानता था। उस वचनने मेरे दिलपर एक नया प्रभाव डाल दिया। उसका विचार करते-करते मैं विलकुल थक गया, उसमें तन्मय हो गया। अव भी मैं उसीसे भरा हूं। ब्रह्मचर्यका जो अर्थ शास्त्रोंमें वताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्मसे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया हो। स्वप्नमें भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो; लेकिन मैं नहीं जानता था

कि प्रजोत्पत्तिके हेतु जो सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझमें आगई। जो दम्पति गृहस्थाश्रममें रहते हुए केवल प्रजोत्पत्तिके हेतु ही परस्पर संयोग और एकान्त करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था कि प्रजोत्पत्तिके लिए विवाह है, फिर भी यह मानता था कि इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनोंको प्रजोत्पत्तिसे डर न मालूम हो, उसके परिणामको टालनेका प्रयत्न न हो और भोगमें दोनोंकी सहमति हो। मैं नहीं जानता कि उसका इससे भी अधिक कोई मतलब होगा; पर यह भी शुद्ध विवाह कब कहा जाय? दम्पति प्रजोत्पत्ति तभी करें जब जरूरत हो, और जब उसकी जरूरत हो तभी एकान्त भी करें। अर्थात् सम्भोग प्रजोत्पादनको कर्त्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी एकान्त न करें। यदि एक पुरुष इस प्रकार हेतुपूर्वक सम्भोगको छोड़कर स्थिर वीर्य हो तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके बराबर है। सोचिए, ऐसा एकान्तवास जीवनमें कितनी बार हो सकता है? वीर्यवान् नीरोग स्त्री-पुरुषोंके लिए तो जीवनमें एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है। ऐसे व्यक्ति क्यों नैष्ठिक ब्रह्मचारीके समान न माने जायं? जो बात मैं पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्यकी तरह स्पष्ट हो गई है। जो विवाहित हैं, इसे ध्यानमें रखें। पहले भी मैंने यह बात बताई थी; पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नहीं थी। उसे मैं अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हूं। पशु-जीवनमें दूसरी बात हो सकती है; लेकिन मनुष्यके विवाहित जीवनका यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी बिना आवश्यकताके प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादनके सम्भोग न करें।

हरिजन सेवक,

३ अप्रेल १९३७

: २३ :

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं :

"क़रीव ढाई साल हुए, हमारे शहरमें एक घटना हो गई थी जो इस प्रकार है—

एक वैश्य गृहस्थकी १६ वरसकी एक कुमारी कन्या थी। लड़कीका मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्षकी थी, स्थानीय कालेजमें पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कवसे इन दोनों मामा और भांजीमें प्रेम था; पर जव वात खुल गई तो उन दोनोंने आत्म-हत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही ज़हर खानेके वाद मर गई; पर लड़का दो रोज वाद अस्पतालमें मरा। लड़कीको गर्भ भी था। इस वातकी शुरू-शुरूमें तो खूव चर्चा चली। यहांतक कि अभागे मां-वापको शहरमें रहना भारी हो गया; पर वक्तके साथ-साथ यह वात भी दव गई और लोग भूलने लगे। कभी-कभी जव ऐसी मिलती-जुलती वात सुननेको मिलती है, तव पुरानी वातोंकी भी चर्चा होती है और यह वाक़या भी दोहरा दिया जाता है; पर उस ज़मानेमें; जव क़रीव-क़रीव सभी लड़कीको और लड़केको भी वुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज़ की थी कि ऐसी हालतमें समाजको विवाह कर लेनेकी इजाज़त दे देनी चाहिए। इस वातसे समाजमें खूव ववण्डर उठा। आपकी इसपर क्या राय है?"

मैंने स्थानका और लेखकका नाम नहीं दिया है; क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहरका नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्नपर ज़ाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्वन्ध जिस समाजमें त्याज्य माने जाते हैं, वहां विवाहका रूप यकायक नहीं ले सकते; लेकिन किसीकी स्वतन्त्रतापर समाज या सम्वन्धी

आक्रमण क्यों करें ? ये मामा और भांजी सयानी उम्रके थे, अपना हित-अनहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नीके सम्बन्धसे रोकनेका किसीको हक़ नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्धको अस्वीकार करता; पर उन्हें आत्म-हत्या करनेतक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकारके सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमोंमें ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते हैं—हिन्दुओंमें भी प्रत्येक वर्णमें त्याज्य नहीं हैं। उसी वर्णमें भिन्न प्रान्तमें भिन्न प्रथा है। दक्षिणमें उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणोंमें ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किन्ही धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोंको नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमें रूढ़िका त्याग करवानेके लिए लोक-मत तैयार करानेकी आवश्यकता है। इस बीचमें व्यक्तियोंको धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादिको सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर समाजका यह कर्त्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोड़ें, उनके साथ निर्दयताका बर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिएं।

उक्त आत्म-हत्याओंका दोष, जिस समाजमें वे हुई; उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजन सेवक,
१ मई १९३७

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं :

'हरिजन सेवक' के इसी अंकमें 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि उक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भांजीके सम्बन्ध जैसे) सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है।...ऐसे प्रतिबंध रुढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।"

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गये हैं। इस शास्त्रके ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वोंके मिश्रणसे सन्तति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओंका पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनोंके सम्बन्धपर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादनके ही लिए दम्पतिका संयोग करना योग्य है तो फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सु-प्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियां गौण समझी जायं? यदि हां, तो किस क्रमसे, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी रायमें वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।
(२) सुप्रजननकी क्षमता।
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।
(४) समाज और देशकी सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।
आपका इस सम्बन्धमें क्या मत है ?

हिन्दू-शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्तिपर जोर दिया गया है। नववालोंको आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति संतानके लिए संयोग करे तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही संतान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की ? वंश-वर्धनकी इच्छाके साथ ही 'पुत्रसे नाम चलता है' यह इच्छा-भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़कीसे इस इच्छाका कैसे समाधान हो सकता है ? वल्कि अभीतक समाजमें 'लड़कीके जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़केके जन्मका होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओंको सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो संतति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल संतानोत्पादनके लिए संयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिएं—यह ठीक है—यह भी सही है कि संयत जीवनमें एक ही वार संयोगसे गर्भ रह जाता है। पहली वातकी पुष्टिमें एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठकी कुटियाके सामने एक नदी वहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जव भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्रको खिलाने जाती, वादको वशिष्ठके घरपर सव लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज़ वारिश हुई और नदीमें वाढ़ आ गई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठसे इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा—'जाओ, नदीसे कहना, मैं सदा निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हूं, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने इसी प्रकार नदीसे कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तव अरुन्धतीके मनमें वड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निरा-हारी कैसे हुए ? जव विश्वामित्र खाना खा चुके, तव अरुन्धतीने उनसे पूछा—'मैं वापस कैसे जाऊं, नदीमें तो वाढ़ है ?' विश्वामित्रने उलटकर

पूछा—'तो आई कैसे ?' उत्तरमें अरुन्धतीने वशिष्ठका पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्रने कहा—'अच्छा तुम नदीसे कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठके यहां लौट रही हूं। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरजका ठिकाना न रहा। वशिष्ठके सौ पुत्रोंकी तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वशिष्ठसे इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूं ? वशिष्ठने बताया—"जो केवल शरीर-रक्षणके लिए ही ईश्वरार्पण-बुद्धिसे भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है, और जो केवल स्व-धर्म पालनके लिए अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।'

परन्तु इसमें और मेरी समझमें तो शायद हिन्दू-शास्त्रमें भी केवल एक सन्तति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्रीका नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूं, बहुतेरे दम्पतियोंको समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है; परन्तु विवाह करनेपर केवल सन्तानोत्पादनके लिए, और फिर भी प्रथम संततिके ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयमसे रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्यमें स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम सु-संस्कारका सूचक है। 'संततिके लिए संयोग' का नियम बना देनेसे सु-संस्कार या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। संतानोत्पत्तिके ही लिए संयोग करनेवाले संयमीका आदर करूंगा, कामेच्छाकी तृप्ति करनेवालेको भोगी कहूंगा; पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचारमें मेरी कहीं ग़लती हो, तो बतावें।"

विवाहमें जो मर्यादा बांधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़िको ही, जो मर्यादाकी वृद्धिके लिए बनाई जाती है, नैतिक कारण माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। संतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर

भाई-बहनके सम्बन्धका प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादिपर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए; लेकिन भाई-बहनके सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्धके अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्ममें नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़िका जो प्रतिबन्ध जिस समाजमें हो, उसका अनुसरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाहके लिए जो पांच मर्यादाएं हरिभाऊजीने रखी हैं, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम और आकर्षणको अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रयमें जानेसे निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त क्रममें आध्यात्मिक उन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तोंका अभाव हो, वहां पारस्परिक प्रेमको स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरोंकी अवगणना कर सकता है, और करता है, ऐसा आजकलके व्यहावरमें देखनेमें आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओंमें भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तोंका पालन होते हुए भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको शर्त न माना जाय; क्योंकि यही एक वस्तु विवाहकी शर्त नहीं।

हिन्दू-शास्त्रमें पुत्रोत्पत्तिपर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस कालके लिए ठीक था, जब समाजमें शस्त्र-युद्धको अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष-वर्गकी बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारणसे एकसे अधिक पत्नियोंकी भी इजाजत थी और अधिक पुत्रोंसे अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो एक ही संतति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्रीके बीच भेद नहीं करता हूं; दोनों एक समान स्वागतके योग्य हैं।

वशिष्ठ, विश्वामित्रका दृष्टान्त सार-रूपमें अच्छा है। उसे शब्दशः सत्य अथवा शक्य माननेकी आवश्यकता नहीं। उससे इतना ही सार निकालना काफ़ी है कि सन्तानोत्पत्तिके ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्यका

विरोधी नहीं है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषोंका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते रहते हैं, उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्रकी सेवाको आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्यकी मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजन सेवक,
१५ अप्रेल १९३७

: २५ :

सन्तति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतोंकी सन्तान-वृद्धि रोकनेके लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्त्तव्य यही है कि उन्हें संयमका धर्म ही समझायें। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी बात है। और मैं नहीं समझता कि देहाती स्त्रियां उन्हें अपनायंगी। उनके बच्चोंके लिए दूध प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—सन्तति-निरोधके लिए स्त्रियां तो संयम करना चाहें; पर पुरुष बलात्कार करें, तब क्या किया जाय ?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री-धर्मका सवाल है। सतियोंको मैं पूजता हूं; पर उन्हें कुएंमें नहीं गिराना चाहता। स्त्रीका सच्चा धर्म तो द्रौपदीने बताया है। पति अगर गिरता है तो स्त्री न गिरे। स्त्रीके संयममें बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मारकर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पतिके लिए वह दरवाजा बन्द कर दे। अधर्मी पतिकी पत्नी बननेसे उसे इन्कार करना चाहिए। हमें स्त्रियोंके अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम-वर्गकी स्त्रियोंका संतति-निरोधके विषयमें क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—मध्यम-वर्गकी हो या बादशाही-वर्गकी हो, भोग भोगना हमारे हाथमें है; लेकिन परिणामके बादशाह हम नहीं बन सकते। सिद्धि होगी या नहीं, यह शंका करना हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ़ यही होगा कि सत्य-धर्म सिखाएं। मध्यम-श्रेणीकी स्त्रियां नये-नये

उपाय काममें लाएं तो हमें मना करना चाहिए। संयम ही एक-मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पतिको उपदंश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे?

उत्तर—उस हालतमें सन्तति-निरोधके उपायोंसे भी स्त्रीका बचाव नहीं हो सकता। ऐसे पतिको क्लीव ही समझकर उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए; इसके लिए स्त्रियां इतनी विद्या सीख लें, जिससे वे स्वावलम्बी बन जायं।

गांधी-सेवा-संघ, द्वितीय अधिवेशन
१० अप्रेल १९३७

: २६ :

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठसे हाल ही पारंगत-पदवी प्राप्त श्री मगनभाई देसाईके ७ अक्तूबरके पत्रसे नीचे लिखा अंश यहां देता हूं—

"इस बारके 'हरिजन' में आपका लेख पढ़कर मेरे मनमें विचार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चाके लिए आपके सामने पेश करूं। इस विषयमें आपने अबतक शायद ही कुछ कहा है। वह है बालकोंको और खास करके विद्यार्थियोंको काम-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही हैं कि श्री... गुजरातमें इस विषयके बड़े हामी हैं। खुद मुझे तो इस बातमें हमेशा अन्देशा ही रहा है; बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषयके अधिकारी भी नहीं हैं। परिणाम तो इस विषयकी अनिष्टता ही प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते हैं कि काम-विज्ञानके न जानने से ही शिक्षा और समाजमें यह बिगाड़ हुआ है। नवीन मानस-शास्त्र भी बताता है कि यही सुप्त काम-भाव मानव-प्रवृत्तिका उद्भव-स्थान है। 'काम एष: क्रोध एष:'—इसके आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा.. एक दिन मुझसे कहता था—'तो आपको यह कहां मालूम है कि हरेकके अन्दर काम नामक राक्षस रहता है?और इसके फलस्वरूप उसकी नीति-भावना जाग्रत होनेके बदले उलटी जड़ होती हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरातमें आजकल काम-विज्ञानके शिक्षणके नामपर बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषयपर पुस्तकें भी लिखी गई हैं। संस्करण-पर-संस्करण छपते हैं और हजारोंकी संख्यामें ये बिकती हैं। कितने ही साप्ताहिक इस विषयके निकलते हैं और उनकी बिक्री भी खूब होती है। खैर यह तो जैसा समाज होता है वैसा उसे परोसनेवाले मिल ही जाते हैं; किन्तु इससे सुधारककी दशा और भी अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मैं चाहता हूं कि आप इसकी शिक्षाके विषयमें सार्वजनिक रूपसे चर्चा करें। शिक्षाके लिए काम-शास्त्रके शिक्षणकी आवश्यकता है ! कौन उसकी शिक्षा देनेका और कौन उसे पानेका अधिकारी है। मामूली भूगोल-गणितकी तरह क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए ! उसकी क्या मर्यादा है और हमारे रगोरेशे में पैठे हुए इस शत्रुकी मर्यादा इससे उलटी दिशामें बांधना उचित है या इस तरह उसे शुभ नामका गौरव देनेकी तरफ ! ऐसे अनेक तरहके सवाल मनमें उठते हैं। आशा है कि आप इस विषयपर अवश्य रोशनी डालेंगे।"

इस पत्रको इतने दिनतक मैंने इसी आशासे रख छोड़ा था कि किसी दिन मैं इसमें उठाये गये प्रश्नोंपर कुछ लिखूंगा। इस बीच मैं बारहवीं गुजराती-साहित्य-परिषद्का प्रमुख बनकर वापस सेगांव आ पहुंचा। विद्यापीठमें चार दिन जो रहा तो गुजराती भाई-बहनोंके सम्पर्कमें आनेसे पुरानी स्मृतियां ताज़ी हो आईं। उक्त पत्रके लेखक भी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा भी, "मेरे उस पत्रका क्या हुआ ?" "मेरे साथ-साथ वह सफ़र कर रहा है। मैं उसके बारेमें ज़रूर लिखूंगा।" यह जवाब देकर मैंने मगन भाईको कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषयपर आता हूं। क्या गजरातमें और क्या दूसरे प्रान्तोंमें, सब जगह कामदेव मामूलके माफ़िक़ विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकलकी उनकी विजयमें एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण उनको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ीको शृंगार समझकर पुलकित होता है, तब कहना चाहिए कि उसके सरदारकी पूरी विजय हो गई ! इस तरह कामदेवकी विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्तमें डंक-कटे बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जाने वाली है। ऐसा होनेके पहले पुरुषार्थकी तो आवश्यकता है ही। यहां मेरा यह आशय नहीं है कि अन्तमें तो कामदेवकी हार होने ही वाली है, इसलिए हम सुस्त या ग़ाफ़िल बनकर बैठे रहें। कामपर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषोंका परम कर्त्तव्य है। उसपर विजाय प्राप्त किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज

अथवा राम-राज होगा ही कहांसे? स्वराज-विहीन स्वराज खिलौनेके आमकी तरह समझना चाहिए। देखनेमें बड़ा सुंदर; पर जब उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल। कामपर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजनकी, क़ौमी ऐक्यकी, खादीकी, गौ-माताकी, ग्रामवासीकी सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवाके लिए बौद्धिक सामग्री बस होनेकी नहीं। आत्म-बलके बिना ऐसी महान् सेवा असम्भव है। और आत्मबल प्रभुके प्रसादके बिना अशक्य है। कामीको प्रभुका प्रसाद मिला हो—ऐसा अबतक देखा नहीं गया।

तो मगन भाईने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रममें कामशास्त्र-के लिए स्थान है या नहीं, यदि है तो कितना? कामशास्त्र दो प्रकारका होता है—एक तो है कामपर विजय प्राप्त करानेवाला; उसके लिए तो शिक्षण-क्रममें स्थान होना ही चाहिए। दूसरा है, कामको उत्तेजन देने वाला शास्त्र। यह सर्वथा त्याज्य है। सब धर्मोंने कामको शत्रु माना है। क्रोधका नम्बर दूसरा है। गीता तो कहती है—कामसे ही क्रोधकी उत्पत्ति होती है। यहां कामका व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषय-से सम्बन्ध रखनेवाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थमें इस्तैमाल किया गया है।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाक़ी रहता है कि बालक-बालिकाओंको गुह्येन्द्रियोंका और उनके व्यापारका ज्ञान दिया जाय या नहीं? मैं समझता हूं कि यह ज्ञान एक हदतक आवश्यक है। आज कितने ही बालक बालिकाएं शुद्ध ज्ञानके अभावमें अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं और वे इन्द्रियोंका बहुत दुरुपयोग करते हुए पाये जाते हैं। आंख होते हुए भी हम नहीं देखते। इस तरह हम कामपर विजय नहीं पा सकते। बालक-बालिकाओंको उन इन्द्रियोंके उपयोगका ज्ञान देनेकी आवश्यकता मैं मानता हूं। मेरे हाथ-नीचे जो बालक-बालिकाएं रही हैं उन्हें मैंने ऐसा ज्ञान देनेका प्रयत्न भी किया है; परन्तु यह शिक्षण और ही दृष्टिसे दिया जाता है। इन इन्द्रियोंका ज्ञान देते हुए संयमकी शिक्षा दी जाती है। कामपर कैसे विजय प्राप्त होती है यह सिखाया जाता है। यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य

और पशुके बीचका भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे हृदय और बुद्धि है। यह उसका धात्वर्थ है। हृदयको जाग्रत करनेका अर्थ है—सारासार-विवेक सिखाना। यह सिखाते हुए कामपर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

तो अब इस शास्त्रकी शिक्षा कौन दे? जिस प्रकार खगोल-शास्त्र-की शिक्षा वही दे सकता है जो उसमें पारंगत हो; उसी तरह कामके जीतने-का शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने कामपर विजय प्राप्त कर ली हो। उसकी भाषामें संस्कारिता होगी, बल होगा, जीवन होगा, जिस उच्चारणके पीछे अनभव-ज्ञान नहीं है, वह जड़वत् है, वह किसीको स्पर्श नहीं कर सकता। जिसको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना नहीं रह सकता।

आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब कामकी विजय सूचित कर रहे हैं। हमें उसके पाशसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही विकट है; मगर परवाह नहीं। अगर इने-गिने ही गुजराती हों, जिन्होंने शिक्षण-शास्त्रका अनुभव प्राप्त किया हो और जो कामपर विजय प्राप्त करनेके धर्मको मानते हों, उनकी श्रद्धा यदि अचल रहेगी, वे जाग्रत रहेंगे और सतत प्रत्यन करते रहेंगे तो गुजरातके बालक-बालिकाएं शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेंगे और कामके जालसे मुक्ति प्राप्त करेंगे और जो उसमें न फंसे होंगे वे बच जायंगे।

हरिजन सेवक,
२८ नवम्बर १९३६

: २७ :

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवकने मुझे एक पत्र भेजा है जिसका सार ही यहां दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है :

'मैं एक विवाहित पुरुष हूं। मैं विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे मां-बापको पूरा विश्वास था। मेरी अनुपस्थितिमें उसने मेरी पत्नीको फुसला लिया, जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बातपर जोर देते हैं कि मेरी पत्नी गर्भको गिरा दे; नहीं तो वह कहते हैं, खानदानकी बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नहीं होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्तापके मारे मरी जा रही है। न तो उसे खानेकी सुध है, न पीनेकी। जब देखो तब रोती ही रहती है। क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि इस हालतमें मेरा क्या फ़र्ज़ है!'

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि हरेक जानता है, समाज में ऐसी घटनाएं कभी-कदास ही नहीं होतीं। इसलिए संयमके साथ सार्वजनिक-रूपसे इस प्रश्नकी चर्चा करना मुझे असंगत नहीं मालूम पड़ता।

मुझे तो दिनके प्रकाशकी तरह यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि गर्भ गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्रीने जो असावधानी की है, वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं; लेकिन उनको कभी कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हें माफ ही नहीं करता; बल्कि उनकी निन्दा भी नहीं करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस तरह छिपा भी नहीं सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने पापको सफलताके साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दयाकी पात्र है। पतिका यह पवित्र कर्तव्य होगा कि वह अपने पिताकी सलाहको न माने और बच्चेकी परवरिश अपने भरसक

पूरे लाड़-प्यारसे करे। वह अपनी पत्नीके साथ रहना जारी रखे या नहीं, यह एक टेढ़ा सवाल है। परिस्थितियां ऐसी भी हो सकती हैं जिनके कारण उसे उससे अलग होना पड़े; लेकिन उस हालतमें वह इस बातके लिए बाध्य होगा कि उसकी परवरिश तथा शिक्षाकी व्यवस्था करे और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण करनेमें भी मुझे कोई ग़लती नहीं मालूम पड़ती। यही नहीं; बल्कि मैं तो ऐसी स्थितिकी भी कल्पना कर सकता हूं जब पत्नीके अपनी ग़लतीके लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जानेपर पति का यह पुनीत कर्त्तव्य होगा कि वह उसको फिरसे ग्रहण कर ले।

यंग इंडिया,
३ जनवरी १९२६

: २८ :

एक परित्याग

सन् १८९१ में विलायतसे लौटनेके बाद मैंने अपने परिवारके बच्चोंको क़रीब-क़रीब अपनी निगरानीमें ले लिया, और उनके—बालक-बालिकाओं-के—कंधोंपर हाथ रखकर उनके साथ घूमनेकी आदत डाल ली। ये मेरे भाइयोंके बच्चे थे। उनके बड़े हो जानेपर भी यह आदत जारी रही। ज्यों-ज्यों परिवार बढ़ता गया, त्यों-त्यों इस आदतकी मात्रा इतनी बढ़ी कि इसकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित होने लगा।

जहांतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नहीं चला कि मैं इसमें कोई भूल कर रहा हूं। कुछ वर्ष हुए कि साबरमतीमें एक आश्रमवासीने मुझसे कहा था कि 'आप जब बड़ी-बड़ी उम्रकी लड़कियों और स्त्रियोंके कन्धोंपर हाथ रखकर चलते हैं, तब इससे लोक-स्वीकृत सभ्यताके विचारको चोट पहुंचती मालूम होती है।' किन्तु आश्रमवासियोंके साथ चर्चा होनेके बाद यह चीज जारी ही रही। अभी हालमें मेरे दो साथी जब वर्धा आये तब उन्होंने कहा कि 'आपकी यह आदत सम्भव है कि दूसरोंके लिए एक उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बन्द कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जंची नहीं। तो भी उन मित्रोंकी चेतावनीकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने पांच आश्रमवासियोंसे इसकी जांच करने और इसके सम्बन्धमें सलाह देनेके लिए कहा। इसपर विचार हो ही रहा था कि इस बीचमें एक निर्णया-त्मक घटना घटी। मुझे किसीने बताया कि यूनिवर्सिटीका एक तेज विद्यार्थी अकेलेमें एक लड़कीके साथ, जो उसके प्रभाव में थी, सभी तरहकी आजादीसे काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि वह उस लड़कीको सगी बहनकी तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओंका

प्रदर्शन किये विना उससे रहा नहीं जाता। कोई उसपर अपवित्रताका ज़रा भी आरोपण करता तो वह नाराज़ हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सव वातोंको अगर यहां लिखूं तो पाठक विना किसी हिच-किचाहटके यह कह देंगे कि जिस आज़ादीसे वह काम लेता था, उसमें अवश्य ही गन्दी भावना थी। मैंने और दूसरे जिन लोगोंने इस सम्वन्धका पत्र-व्यवहार जव पढ़ा तव हम इस नतीजेपर पहुंचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरेका वना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धानने मुझे विचारमें डाल दिया। मुझे अपने उन दोनों साथियोंकी दी हुई चेतावनी याद आई और मैंने अपने दिलसे पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने वचावमें मेरे व्यवहारकी दलील दे रहा है तो मुझे कैसा लगे? मैं यहां यह वतला दूं कि यह लड़की, जो उस नवयुवककी चेष्टाओंका शिकार वन गई है, यद्यपि वह उसे विलकुल पवित्र और भाईके समान मानती है, तो भी वह उसकी उन चेष्टाओंको पसन्द नहीं करती; वल्कि यह आपत्ति भी करती है; पर उस वेचारीमें इतनी ताक़त नहीं कि वह उस यवकको आपत्तिजनक चेष्टाओंको रोक सके। इस घटनाके कारण मेरे मनमें जो आत्म-परीक्षण मंथन कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहारको पढ़नेके दो-तीन दिनके अन्दर मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथाका परित्याग कर दिया, और गत १२वीं तारीखको मैंने वर्धाके आश्रमवासियोंको अपना यह निश्चय सुना दिया। यह वात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहारके वीच या इसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मनमें नहीं आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूं कि मेरा आचरण पिताके जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़-कियोंका मैं मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हूं, उन्होंने अपने मनकी वातें इतने विश्वासके साथ मेरे सामने रखीं कि जितने विश्वासके साथ वे शायद और किसीके सामने न रखतीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्यमें मेरा विश्वास नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुषका परस्पर स्पर्श वचानेके लिए एक रक्षाकी दीवार

बनानेकी ज़रूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य ज़रासे प्रलोभनके आगे भंग हो जाय तो भी जो स्वतन्त्रता मैंने ले रखी है, उसके ख़तरोंसे मैं अनजान नहीं हूं।

इसलिए जिस अनुसन्धानका मैंने ऊपर ज़िक्र किया है; उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देनेके लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कन्धोंपर हाथ रखकर चलनेका व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण-को हज़ारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मतासे देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूं, उसमें सतत जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिएं जिनका बचाव मुझे दलीलोंके सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरणका कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवकका मामला बतौर एक चेतावनीके मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया। मैंने इस आशासे यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगोंको सही रास्ता सुझा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरणसे प्रभावित होकर ग़लती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजनाके पीछे, जिसे ग़लतीसे 'आनन्द' कहते हैं, इस निधिको यों ही बरबाद नहीं कर देना चाहिए। और इस चित्रमें चित्रित लड़कीके समान कमज़ोर मनवाली लड़कियोंमें इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामोंसे अनजान नवयुवकोंकी हरकतोंका—फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलावें—साहसके साथ सामना कर सकें।

हरिजन सेवक,
२७ सितम्बर १९३५

: २६ :

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेस-नेताने बातचीतके सिलसिलेमें उस दिन मुझसे कहा—"यह क्या बात है कि कांग्रेस अब नैतिकताकी दृष्टिसे वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी ? तबसे तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके नब्बे फ़ीसदी सदस्य कांग्रेसके अनुशासनका पालन नहीं करते। क्या आप इस हालतको सुधारनेके लिए कुछ नहीं कर सकते ?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपनी ज़िम्मेदारीसे हट नहीं सकता कि अब मैं कांग्रेसमें नहीं हूं। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करनेके लिए ही इससे बाहर हुआ हूं। कांग्रेसकी नीतिपर अब भी मैं अपना प्रभाव डाल रहा हूं, यह मैं जानता हूं। और १९२० में कांग्रेसका जो विधान बना था, उसे बनानेवालेकी हैसियतसे उस गिरावटके लिए मुझे अपनेको ज़िम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा जा सकता है।

कांग्रेसने आरम्भिक कठिनाइयोंके बीच सन् १९२० में काम शुरू किया था। सत्य और अहिंसापर बतौर ध्येयके बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्योंने इन्हें नीतिके तौरपर ही स्वीकार किया। वह अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नई नीतिसे कांग्रेसको काम करते हुए देखकर उनमेंसे अनेक इन्हें अपने ध्येयके रूपमें स्वीकार कर लेंगे; लेकिन ऐसा कुछ ही लोगोंने किया, बहुतोंने नहीं। शुरूआतमें तो सबसे बड़े नेताओंमें भारी परिवर्त्तन देखनेमें आया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदासके जो पत्र 'यंग इंडिया' में उद्धृत किये गए थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम, सादगी और अपने आपको कुर्बानि

कर देनेके जीवनमें उन्हें एक नये आनन्द और एक नई आशाका अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो क़रीब-क़रीब फ़क़ीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयोंमें होनेवाली तब्दीलीको मैं आनन्दके साथ देखता था। और जो बात इन चार नेताओंके विषयमें सच है, वही और भी ऐसे बहुतोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके कि मैं नाम गिना सकता हूं। इन नेताओंके उत्साहका लोगोंपर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्तन 'एक सालमें स्वराज्य' के आकर्षणकी वजहसे था। इसकी पूर्तिके लिए मैंने जो शर्तें लगाई थीं, उनपर किसीने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहबने तो यहांतक कह डाला कि सत्याग्रह-सेनाके, जैसी कि कांग्रेस उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रहके अर्थको महसूस करें) सेनापतिकी हैसियतसे मुझे इस बातका निश्चय कर लेना चाहिए था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं, वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायंगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ वह ज्ञान-चक्षु मेरे पास नहीं था। सामूहिक रूपमें और राजनीतिक उद्देश्यसे अहिंसाका उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्व-पूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तोंका यह उद्देश्य था कि जिनसे लोगोंकी शक्तिका अन्दाजा लग सके। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी हो सकती थीं। ग़लतियों, या ग़लत अन्दाज़ोंकी तो सदा ही सम्भावना थी। जो भी हो, जब स्वराज्यकी लड़ाई लम्बी हो गई और खिलाफ़तके सवालमें जान न रही तो लोगोंका उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिंसामें नीति-के तौरपर भी विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्यका प्रवेश हो गया। जिन लोगोंका इन दोनों गुणोंमें या खद्दरकी शर्तमें कोई विश्वास नहीं था, वे इसमें घुस आये और बहुतोंने तो खुले आम भी कांग्रेस-विधानकी अवहेलना करनी शुरू कर दी।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। वर्किंग-कमेटी कांग्रेसको इस बुराईसे मुक्त करनेका कुछ प्रयत्न करती रही है; लेकिन दृढ़तापूर्वक नहीं, और न वह कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या कम हो जानेके खतरेको उठानेके लिए तैयार हो सकी है। मैं खुद तो संख्याके बजाय गुणमें ही ज्यादा विश्वास करता हूं।

लेकिन अहिंसाकी योजनामें जबर्दस्तीका कोई काम नहीं है। उसमें तो इसी बातपर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगोंकी बुद्धि और हृदयतक—उसमें भी बुद्धिकी अपेक्षा हृदयपर ही ज्यादा—पहुंचनेकी क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापतिके शब्दमें ताक़त होनी चाहिए—वह ताक़त नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रोंसे प्राप्त होती है; बल्कि वह जो जीवनकी शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और संतत आचरणसे प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्यका पालन किये बग़ैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है, जितना कि मनुष्यके लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहां खाली दैहिक आत्मसंयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्यका भंग है और यही हाल क्रोधका है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्तिकी रक्षा और ऊर्ध्वगतिसे प्राप्त होती है, जिससे कि जीवनका निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्तिको नष्ट होने देनेके बजाय, संचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्य-वस्थित, अवांछनीय विचारोंसे भी इस शक्तिका बराबर और अज्ञात रूपसे क्षय होता रहता है और चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओंका मूल होता है इसलिए वे भी इसीका अनुसरण करती हैं। इसीलिए पूर्णतः नियंत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकारकी शक्ति है। और स्वतः क्रिया-शील बन सकता है। मूकरूपमें की जानेवाली हार्दिक प्रार्थनाका मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वरकी मूर्तिका उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्रके अन्दर किसी बातकी इच्छा भर करनेकी देर है! जैसा वह चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने वाले नलमें भाप रखनेसे कोई शक्ति पैदा नहीं होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्तिका किसी भी रूपमें क्षय होने देता है, उसमें इस शक्तिका होना असं-भव है। प्रजोत्पत्तिके निश्चित उद्देश्यसे न किया जाने वाला काम-सम्बन्ध इस शक्ति-क्षयका एक बहुत बड़ा नमूना है, इसलिए उसकी खास

तौरसे निन्दा की गई है, वह ठीक ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्यके लिए मनुष्य-जातिके विशाल समूहोंको संगठित करना है, उसे तो, इन्द्रियों-के जिस पूर्ण निग्रहका मैंने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वरकी असीम कृपाके बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नहीं है। गीताके दूसरे अध्यायमें एक श्लोक है—

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः,
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात्—जबतक उपवास किये जाते हैं, तबतक इन्द्रियां विषयोंकी ओर नहीं दौड़तीं, पर अकेले उपवाससे रस सूख नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और बढ़ भी सकते हैं। इसको वशमें करनेके लिए तो ईश्वर-का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यांत्रिक या अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जानेके बाद यह कभी नष्ट नहीं होता। उस हालतमें वीर्य-शक्ति इस तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तोंमेंसे किसीमें होकर उसके निकलनेकी सम्भावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो कन्दराओंमें रहनेवाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्मचारीको तो, कहते हैं, स्त्रियोंका स्पर्श तो क्या, उसका दर्शन भी कभी नहीं करना चाहिए। निस्सन्देह किसी ब्रह्मचारीको काम-वासनासे किसी स्त्रीको न तो छूना चाहिए, न देखना चाहिए और न उसके विषयमें कुछ कहना या सोचना चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकोंमें हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्वपूर्ण अव्यय 'कामवासना-पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूटकी वजह यह मालूम पड़ती है कि ऐसे मामलोंमें मनुष्य निष्पक्षरूपसे निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब तो उसपर ऐसे सम्पर्कका असर पड़ा और कब नहीं। काम-विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए दुनियामें आजादीसे सबके साथ हिलने-मिलनेपर ब्रह्मचर्यका पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन

अगर संसारसे नाता तोड़ लेनेपर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई विशेष मूल्य ही नहीं है।

जैसे भी हो मैंने तो तीस वर्षसे भी अधिक समयसे प्रवृत्तियोंके बीच रहते हुए ब्रह्मचर्यका खासी सफलताके साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका निश्चय कर लेनेके बाद, अपनी पत्नीके साथ व्यवहारको छोड़कर मेरे बाह्य आचरणमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। दक्षिण अफ़्रिकामें भारतीयोंके बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमें मैं स्त्रियोंके साथ आज़ादीके साथ हिलता-मिलता था। ट्रांसवाल और नेटालमें शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मैं न जानता होऊं। मेरे लिए तो इतनी सारी स्त्रियां बहनें और बेटियां ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है। मैंने तो अपने तथा उन लोगोंके लिए जो कि मेरे कहनेपर इस प्रयोगमें शामिल हुए हैं, अपने ही नियम बनाये हैं और अगर मैंने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधोंका अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्यमें स्त्रियोंको जो सारी बुराई और प्रलोभनका द्वार बताया गया है, उसे मैं इतना भी नहीं मानता। मैं तो ऐसा मानता हूं कि मुझमें जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी मांकी बदौलत है। इसलिए स्त्रियोंको मैंने कभी इस तरह नहीं देखा कि कामवासनाकी तृप्तिके लिए ही वे बनाई गई हैं, बल्कि हमेशा उसी श्रद्धाके साथ देखा है जो कि मैं अपनी माताके प्रति रखता हूं। पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करने वाला है। स्त्रीके स्पर्शसे वह अपवित्र नहीं होता; बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक पवित्र नहीं होता। लेकिन हालमें मेरे मनमें सन्देह ज़रूर उठा है कि स्त्री या पुरुषके सम्पर्कमें आनेके लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको किस तरहकी मर्यादाओंका पालन करना चाहिए। मैंने जो मर्यादाएं रखी हैं वे मुझे पर्याप्त नहीं मालूम पड़तीं; लेकिन वे क्या होनी चाहिएं, यह मैं नहीं जानता। मैं तो प्रयोग कर रहा हूं। इस बातका मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषाके अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हूं। अब भी मैं अपने विचारोंपर उतना नियंत्रण नहीं रख सकता हूं जितने नियंत्रणकी अपनी अहिंसाकी शोधोंके लिए मुझे आवश्यकता है; लेकिन अगर मेरी अहिंसा

ऐसी हो जिसका दूसरोंपर असर पड़े और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारोंपर और अधिक नियंत्रण करना ही चाहिए। इस लेखके आरम्भिक वाक्यमें नेतृत्वकी जिस प्रत्यक्ष असफलताका उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कहीं-न-कहीं किसी कमीका रह जाना ही है।

अहिंसामें मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ़ है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देशकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिए; बल्कि अगर ठीक तरहसे इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबीको भी रोक सकती है, जो हिन्दुस्तानके बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी संसारमें जिसके व्याप्त हो जानेका अन्देशा है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वरने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है, जो अहिंसाके पथपर सारी दुनियाकी रहनुमाई करूं; लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तानकी अनेक खराबियोंके निवारणार्थ अहिंसाका प्रयोग करनेके लिए उसने मुझे अपना औजार बनाया है। इस दिशामें अभीतक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है; लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाक़ी है। इतनेपर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आम तौरपर कांग्रेसवादियोंकी जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसानेकी शक्ति मुझमें नहीं रही है। जो अपने औजारोंको ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं है। यह तो 'नाच न आवे, आंगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी तरह बिगड़े हुए कामोंके लिए अपने आदमियोंको दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता; पर मैं यह जानता हूं कि मैं बुरा सेनापति नहीं हूं। अपनी मर्यादाओंको जाननेकी जितनी बुद्धि मुझमें मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अन्दरसे दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूंगा।

उसकी कृपासे मैं कोई आधी सदीसे जो काम कर रहा हूं अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा; लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करनेको अभी काफी काम है। जो अन्धकार मेरे ऊपर

छा गया मालूम पड़ता है, वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनोंसे भारत अपने लक्ष्यतक पहुंच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डांडी-कूचसे भी ज़्यादा उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बग़ैर ही ऐसा हो जाय। मैं ईश्वरसे उस प्रकाशकी याचना कर रहा हूं जो अन्धकारका नाश कर देगा। अहिंसामें जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हें इसमें मेरा साथ देना चाहिए।

हरिजन सेवक,
२३ जुलाई १९३८

: ३० :

उसकी कृपा विना कुछ नहीं

डॉक्टरों और अपने-आप जेलर बनने वाले सरदार वल्लभभाई तथा जमनालालजी की कृपासे मैं फिर पाठकोंके सम्पर्कमें आनेके काबिल हो गया हूं, हालांकि है यह परीक्षणके तौरपर और एक निश्चित सीमातक ही। इन लोगोंने मेरी स्वतन्त्रतापर यह बन्धन लगा दिया है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है कि फिलहाल मैं 'हरिजन' में उससे अधिक किसी हालतमें नहीं लिखूंगा जो कि मुझे बहुत जरूरी मालूम पड़े; और वह भी इतना ही कि जिसके लिखनेमें प्रति सप्ताह कुछ घंटेसे अधिक समय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैंने अभीसे लिखा-पढ़ी शुरू कर दी है, और किसीकी निजी समस्याओं या घरेलू कठिनाइयोंके बारेमें मैं निजी पत्र-व्यवहार नहीं करूंगा; और न तो मैं किसी सार्वजनिक कार्यक्रमको स्वीकार करूंगा, न किसी सार्वजनिक सभामें भाषण दूंगा या उपस्थित ही होऊंगा। सोने, दिलबहलाव, मिहनत और भोजनके बारेमें भी निश्चित रूपसे निर्देश कर दिये गये हैं, लेकिन उनके वर्णनकी कोई जरूरत नहीं; क्योंकि उनसे पाठकों-का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे आशा है कि इन हिदायतोंका पालन करनेमें 'हरिजन'के पाठक तथा संवाद-दाता लोग मेरे और महादेव भाईके साथ, जिन-के जिम्मे सब पत्र-व्यवहारको भुगतानेका काम होगा, पूरा सहयोग करेंगे।

मेरी बीमारीके मूल और उसके लिए किये जाने वाले उपायोंकी कुछ बात पाठकोंके लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहांतक मैंने अपने डॉक्टरको समझा है, मेरे शरीरका बहुत सावधानी और सिरदर्दीके साथ निरीक्षण करनेपर भी उन्हें मेरे शारीरिक अवयवोंमें कोई खराबी नहीं मिली। उनकी रायमें बहुत सम्भवतः 'प्रोटीन' और 'कारबोहाइड्रेट्स' की कमी, जो कि शक्कर और निशास्तेके द्वारा प्राप्त होती है, और बहुत दिनोंसे

अपने रोज़मर्राके सार्वजनिक काम-काजके अलावा लगातार लम्बे-लम्बे समयतक परेशान कर देनेवाली विविध निजी समस्याओंमें उलझे रहनेसे यह बीमारी हुई थी। जहांतक मुझे याद पड़ता है पिछले बारह महीने या इससे भी अधिक समयसे मैं इस बातको बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढ़ते जानेवाले कामकी तादादमें अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए, जब बीमारी आई तो मेरे लिए वह नई बात नहीं थी। और बहुत सम्भव है कि दुनियामें इसका इतना ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्रकी ज़रूरतसे ज्यादा चिन्ता सामने न आती, जिन्होंने कि मेरे स्वास्थ्यको गिरता देखकर जमनालालजीको सनसनीदार रुक्क़ा भेज दिया। बस, जमनालालजीने यह खबर पाते ही उन सब होशियार डॉक्टरोंको बुला लिया जो कि वर्धामें मिल सकते थे और विशेष सहायताके लिए नागपुर व बम्बई भी खबर भेज दी।

जिस दिन मैं बीमार पड़ा, उस दिन सवेरे ही मुझे उसकी चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दनके पास एक खास तरहका दर्द मालूम पड़ा; लेकिन मैंने उसपर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसीसे कुछ नहीं कहा। दिन-भर मैं अपना काम करता रहा। शामको हवाखोरीके वक्त जब मैं एक मित्रके साथ बातें कर रहा था तो मुझे बहुत थकावट मालूम पड़ने लगी और मैं बहुत गम्भीर हो गया। मेरे स्नायु इससे पहले पखवाड़ेमें ऐसी समस्याओंके सोच-विचारमें पहले ही काफ़ी ढीले पड़ चुके थे, जो कि मेरे लिए मानों स्वराज्यके सर्वप्रधान प्रश्नकी ही तरह महत्त्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारीको अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान देना पड़ता और मैंने अपनेको थोड़ा आराम देकर उस कठिनाईको हल करनेकी कोशिश की होती; लेकिन जो कुछ हो गया उसपर नज़र डालनेसे मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जो-कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डॉक्टरोंने जो असाधारण सावधानी रखनेकी सलाह दी और उन्हींके समान असाधारण रूपसे उक्त दोनों जेलरोंने जो देख-भाल रखी उसके कारण मजबूरन मुझे

आराम करना पड़ा, जो वैसे मैं कभी न करता, और उससे मुझे आत्म-निरीक्षणका काफी समय मिल गया। इसलिए उससे मुझे स्वास्थ्यका लाभ ही नहीं हुआ; बल्कि आत्म-निरीक्षणसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीताका जो अर्थ मैं समझा हूं उसका पालन करनेमें मैं कितनी ग़लती कर रहा हूं। मुझे पता लगा कि जो विविध समस्याएं हमारे सामने उपस्थित हैं, उनकी काफ़ी गहराईमें मैं नहीं पहुंचा हूं। यह स्पष्ट है कि उनमेंसे अनेकने मेरे हृदयपर असर डाला है और मैंने उन्हें, अपनी भावुकताको प्रेरित करके, अपने स्नायुओंपर ज़ोर डालने दिया है। दूसरे शब्दोंमें कहूं तो गीताके भक्तको उनके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नहीं रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृतिके आदेशका पूर्णतः अनुसरण करता है उसके मनमें बुढ़ापेका भाव कभी आना ही नहीं चाहिए। ऐसा व्यक्ति तो अपनेको सदा तरो-ताज़ा और नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरनेका समय आयगा तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मज़बूत वृक्षके पत्ते गिरते हों। भीष्म पितामहने मृत्यु-शैय्यापर पड़े हुए भी युधिष्ठिरको जो उपदेश दिया, मेरी समझमें उसका यही अर्थ है। डॉक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते कभी नहीं थकते थे कि हमारे आस-पास जो घटनाएं हो रही हैं, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज़ नहीं होना चाहिए। कोई दुःखद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आये, इसकी भी ख़ास तौरपर सावधानी रखी गई। यद्यपि मेरा खयाल है कि मैं गीताका उतना बुरा अनुयायी नहीं हूं, जैसा कि इस सावधानीकी कार्रवाईसे मालूम पड़ता है; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उनकी हिदायतोंमें सार अवश्य था; क्योंकि मगन-वाड़ीसे महिलाश्रम जानेकी जमनालालजीकी बात मैंने कितनी अनिच्छासे क़बूल की, यह मुझे मालूम है। जो भी हो, उन्हें यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त-रूपसे मैं कोई काम कर सकता हूं। मेरा बीमार पड़ जाना उनके लिए इस बातका बड़ा भारी प्रमाण था कि अनासक्तिकी मेरी जो ख्याति है, वह थोथी है, और इसमें मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक बुरा होनेको बाक़ी था। १८९८ में

में, जान-बूझ कर और निश्चय के साथ, बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करनेकी कोशिश करता रहा हूं। मेरी व्याख्याके अनुसार, इसमें न केवल शरीर की, बल्कि मन और वचनकी शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवादके, जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्षसे अधिक समयके सतत एवं जागरूक प्रयत्नके बीच, मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी भी मेरे मनमें इस सम्बन्धमें ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस बीमारीके समय मुझे महसूस हुई। यहांतक कि मुझे अपनेसे निराशा होने लगी; लेकिन जैसे ही मेरे मनमें ऐसी भावना उठी, मैंने अपने परिचारकों और डॉक्टरोंको उससे अवगत कर दिया; लेकिन वे मेरी कोई मदद नहीं कर सके। मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। अलबत्ता इस अनुभवके बाद मैंने उस आराममें ढिलाई कर दी, जो कि मुझपर लादा गया था और अपने इस बुरे अनुभवको स्वीकार कर लेनेसे मुझे बड़ी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे ऊपरसे बड़ा भारी बोझ हट गया और कोई हानि हो सकनेसे पहले ही मैं सम्हल गया; लेकिन गीताका उपदेश तो स्पष्ट और निश्चित है; जिसका मन एक बार ईश्वरमें लग जाय वह कोई पाप नहीं कर सकता। मैं उससे कितना दूर हूं, यह तो वही जानता है। ईश्वरको धन्यवाद है कि अपने महात्मापनकी प्रसिद्धिसे मैं कभी धोखेमें नहीं पड़ा हूं; लेकिन इस जबर्दस्तीके विश्रामने तो मुझे इतना विनम्र बना दिया है, जितना मैं पहले कभी नहीं था। इससे अपनी मर्यादाएं और अपूर्णताएं भली-भांति मेरे सामने आ गई हैं; लेकिन उनके लिए मैं उतना लज्जित नहीं हूं जितना कि सर्वसाधारणसे उनको छिपानेमें होता। गीताके सन्देशमें सदाकी तरह आज मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वासको ऐसे सुन्दर रूपमें परिणत करनेके लिए कि जिससे गिरावटका अनुभव ही न हो, लगातार अथक प्रयत्नकी आवश्यकता है; लेकिन उसी गीतामें साथ-साथ असंदिग्ध रूपसे यह भी कहा हुआ है कि ईश्वरीय अनुग्रहके बिना वह स्थिति ही प्राप्त नहीं हो सकती। अगर विधाताने इतनी गुंजाइश न रखी होती तो हमारे हाथ-पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य हो गये होते।

(ह० से०, २९.२.३६)

: ३१ :

विद्यार्थियोंके लिए लज्जाजनक

पंजाबके एक कालेजकी लड़कीका एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र क़रीबन दो महीनेसे मेरी फ़ायलमें पड़ा हुआ है। इस लड़कीके प्रश्नका जवाब जो अभीतक नहीं दिया इसमें समयके अभावका तो केवल एक बहाना था। किसी-न-किसी तरह इस कामसे अपनेको मैं बचा रहा था, हालांकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाब देना चाहिए। इस बीचमें मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहनका लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती हैं। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेजकी इस लड़कीकी जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुक़ाबला करना मेरा कर्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनोंतक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूं :

"लड़कियों और वयस्क स्त्रियोंके सामने, उनकी इच्छाके विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जब कि उन्हें अकेली जानेकी हिम्मत करनी पड़ती है—या तो उन्हें एक ही शहरमें एक जगहसे दूसरी जगह जाना होता है या एक शहरसे दूसरे शहरको। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषातकका प्रयोग करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता नहीं है, तो इससे भी आगे बढ़नेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूं कि ऐसे मौक़ोंपर अहिंसा क्या काम दे सकती है? हिंसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्रीमें काफी हिम्मत हो तो उसके पास जो भी साधन होंगे वह उन्हें काममें लायगी और एक बार बदमाशोंको सबक़ सिखा देगी। वे कम-

से-कम हंगामा तो मचा सकती हूं जिससे कि लोगोंका ध्यान आकर्षित हो जाय और गुण्डे वहांसे भाग जायं। लेकिन मैं यह जानती हूं कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगोंका अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी बातें सुनेंगे। पर उस आदमीके लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिलपर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कि कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषाका प्रयोग करता है? उसे दलील देकर समझानेका आपको मौक़ा नहीं है। आपके उससे फिर मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं। हो सकता है, आप उसे पहचानें भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितिमें वह बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूं। २६ अक्तूबरकी रात-की बात है। मैं अपनी एक सहेली के साथ ७—३० बजे के क़रीब एक खास कामसे जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथीको साथ ले जाना नामुम-किन था, और काम इतना जरूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्तेमें एक सिख युवक साइकिलपर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सके उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष करके ही गुनगुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़कपर कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे चंद क़दम जानेसे पहले वह लौट पड़ा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालांकि वह अब भी हमसे खासे फासलेपर था। उसने हमारी तरफ साइकिल घुमाई। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरनेका था, या यूं ही हमारे पाससे सिर्फ गुजरनेका। हमें ऐसा लगा कि हम खतरेमें हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरीमें विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़कीके मुक़ाबले शरीरसे कमज़ोर हूं; लेकिन मेरे हाथमें एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आगई। साइकिलकी तरफ मैंने उस किताबको ज़ोरसे मारा और चिल्लाकर कहा, "चुहलबाज़ी करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा?" वह मुश्किलसे अपनेको संभाल सका,

और साइकिलकी रफ्तार बढ़ाकर वहांसे रफू-चक्कर हो गया। अब अगर मैंने उसकी साइकिलकी तरफ किताब जोरसे न मारी होती तो वह अन्त-तक इसी तरह अपनी गन्दी भाषासे हमें तंग करता जाता। यह तो मामूली; बल्कि नगण्य-सी घटना है; पर मैं चाहती हूं कि आप लाहौर आते और हम हत-भागिनी लड़कियोंकी मुसीबतोंकी दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक-ठीक हल ढूंढ सकते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियोंका मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियां अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती हैं, और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं? दूसरे स्त्रियोंको अपमानित करनेकी जिन युवकोंको यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उनको सुधारनेका क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नई पीढ़ीके आनेतक इन्तजार करना चाहिए और तब-तक हम इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त करती रहें, जिस पीढ़ीने कि बचपनसे ही स्त्रियोंके साथ भद्रोचित व्यवहार करनेकी शिक्षा पाई होगी। सरकारकी या तो इस सामाजिक बुराईका मुक़ाबला करनेकी इच्छा नहीं या ऐसा करनेमें वह असमर्थ है। और हमारे बड़े-बड़े नेताओंके पास ऐसे प्रश्नोंके लिए वक्त नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़कीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवकोंकी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, "शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियोंको करना चाहिए।" कभी-कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोंके ऐसे दुर्व्यवहारके खिलाफ़ छटादार भाषण करते हुए पाते हैं, मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्या-का हल निकालनेमें निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारों पर अखबारोंमें इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखनेतक-के लिए औरतोंको घरोंसे बाहर नहीं निकलना चाहिए। इसी तरह एक बातसे आप जान सकते हैं कि दुनियाके इस हिस्सेमें हम किस क़दर मुसीबतोंमें फंसी हुई हैं। ऐसे-ऐसे नोटिसोंको जो लिखते हैं, न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं कि ऐसी चेतावनियां उन्हें निकालनी चाहिए और न पढ़ने वाले ही?"

एक दूसरी पंजाबी लड़कीको मैंने यह पत्र पढ़नेके लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवनके निजी अनुभवके आधारपर इस घटनाका समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाददाताने जो-कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियोंका अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोंके अनुभव लिखे हैं। सिनेमा-थियेटरोंमें उनकी पिछली लाइनमें बैठे हुए लड़के उन्हें दिक़ करते हैं, उनके लिए ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं, जिसे मैं अश्लीलके सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियोंके साथ किये जानेवाले भद्दे मज़ाक़ भी पत्र-लेखिकाने मुझे लिखे हैं; लेकिन मैं उन्हें यहां उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो तो इसमें सन्देह नहीं कि उस लड़कीने, जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमज़ोर बताती है, जो इलाज—साइकिलके सवारपर ज़ोरसे किताब मारकर—किया, वह बिलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूं कि यदि कोई व्यक्ति जबर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्तेमें शारीरिक कमज़ोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुक़ाबलेमें शारीरिक दृष्टिसे कोई बहुत बलवान विरोधी हो। और हम यह भली-भांति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताक़त इस्तैमाल करनेके इतने ज्यादा तरीक़े ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थितिका ज़िक्र पत्र-लेखिकाने किया है, वैसी परिस्थितियोंमें लड़कियोंको आत्म-रक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल बढ़ रहा है; लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्म-रक्षाके हथियारके तौरपर अपने हाथकी किताब मारकर बच गई हो; लेकिन इस बढ़ती हुई बुराईका यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मज़ाक़के कारण बहुत घबराने या डर जानेकी ज़रूरत नहीं; लेकिन इनकी ओरसे आंख मूंद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले भी अखबारोंमें छप जाने चाहिएं। इस बुराईका भंडाफोड़ करनेमें किसीका

झूठा लिहाज नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराईके लिए प्रबल लोक-मत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन बातोंको जनता उदासीनतासे देखती है; लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यों दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसी गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिएं। चोरीके मामलों तकके लिए उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इस तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे, इस बुराईका इलाज नहीं हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकारके लिए अन्धकार चाहते हैं। जब उनपर रोशनी पड़ती है, वे खुद-ब-खुद खत्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकों-की दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहसको पसन्द करती है। आजकलकी लड़की वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नहीं; बल्कि लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींचनेके लिए तरह-तरहके भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपनेको रंगकर कुदरतको भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखाना चाहती है। ऐसी लड़कियोंके लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बहुत बार लिख चुका हूं कि हमारे हृदयमें अहिंसाकी भावनाके विकासके लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसाकी भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवनके तरीकेमें यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरहके-से विचार रखने वाली लड़कियां ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमें भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं; लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्मपर हमला होनेका खतरा है, तो उनमें उन पशु मनुष्यके आगे आत्म-समर्पण करनेके बजाय मर जानेतकका साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़कीको इस तरह बांधकर या मुंहमें कपड़ा ठूंसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानीसे मर भी नहीं सकती, जैसे कि मैंने सलाह दी है; लेकिन मैं फिर भी जोरोंके साथ

कहता हूं कि जिस लड़कीमें मुकाबलेका दृढ़ संकल्प है, वह उसे असहाय बनानेके लिए बांधे गये सब सम्बन्धोंको तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हींके लिए सम्भव है; जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिंसापर दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षाके साधारण तरीके सीखकर कायर युवकोंके अश्लील व्यवहारसे अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें, जिससे भली लड़कियोंको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दुःख होता है कि ज्यादातर नौजवानोंमें बहादुरीका ज़रा भी माद्दा नहीं रहा; लेकिन उनमें एक वर्गके नाते नामवर होनेकी डाह पैदा होनी चाहिए। उन्हें अपने साथियोंमें होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदातकी जांच करनी चाहिए। उन्हें हर एक स्त्रीका अपनी मां और बहनकी तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाक़ी सारी लिखाई-पढ़ाई फ़िजूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल-मास्टरोंका फ़र्ज नहीं है कि लोगोंके सामने जैसे अपने विद्यार्थियोंकी पढ़ाईके लिए जिम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचाके लिए भी उनको पूरी तसल्ली दें?

हरिजन सेवक,

३१ दिसम्बर १९३८

: ३२ :

आजकलकी लड़कियां

ग्यारह लड़कियोंकी ओरसे लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है, जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गए हैं। उनमें ऐसे हेर-फेर करके जिससे उनके मतलबमें तो कोई तबदीली न हो; पर वह पढ़नेमें अधिक अच्छा हो जाय, मैं उसे यहां देता हूं—

"एक लड़कीकी 'आत्म-रक्षा कैसे करें ?' शीर्षक शिकायतपर जो ३१ दिसम्बर १९३८ के 'हरिजन' में प्रकाशित हुई, आपने जो टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने लायक़ है। आधुनिक यानी आजकलकी लड़कीने आपको इस हदतक उत्तेजित कर दिया मालूम पड़ता है कि अन्तमें आपने उसे अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी शौक़ीन बतला डाला है। इससे स्त्रियों के प्रति आपके जिस विचारका पता लगता है वह बहुत स्फूर्तिदायक नहीं है।

इन दिनों जब कि पुरुषोंकी मदद करने और जीवनके भारमें बराबरीका हिस्सा लेनेके लिए स्त्रियां बन्द दरवाज़ोंसे बाहर आ रही हैं, यह निःसन्देह आश्चर्यकी ही बात है कि पुरुषों द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जानेपर अभी भी उन्हें ही दोष दिया जाता है। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें दोनोंका क़सूर बराबर हो। कुछ लड़कियां ऐसी भी हो सकती हैं जिन्हें अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय हो; लेकिन उस हालतमें यह भी मानना ही पड़ेगा कि ऐसे पुरुष भी हैं जो ऐसी लड़कियोंकी टोहमें गली-सड़कोंमें फिरते रहते हैं। और यह तो हरगिज़ नहीं माना जा सकता या मानना चाहिए कि आजकल की सभी लड़कियां इस तरह अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बननेकी शौकीन हैं या आजकलके नवयुवक सब उनकी टोहमें फिरनेवाले ही हैं। आप खुद

आजकलकी काफी लड़कियोंके सम्पर्कमें आये हैं और उनके निश्चय, वलिदान एवं स्त्रियोचित अन्य गुणोंका आपपर जरूर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखने वालीने जैसे बदचलन आदमियोंका जिक्र किया है उनके खिलाफ़ लोक-मत तैयार करनेका जहांतक सवाल है, यह करना लड़कियोंका काम नहीं है। यह काम हम झूठी शर्मके लिहाज़से नहीं; वल्कि उसके असरके लिहाज़से कहती हैं।

लेकिन संसार-भरमें जिसकी इज्जत है ऐसे आदमीके द्वारा ऐसी वात कही जानेसे एक वार फिर उसी पुरानी और लज्जाजनक लोकोक्तिकी पैरवी की जाती मालूम पड़ती है कि 'स्त्री नरकका द्वार है।'

इस कथनसे यह न समझिये कि आजकलकी लड़कियां आपकी इज़्ज़त नहीं करतीं। नवयुवकोंकी तरह वे भी आपका सम्मान करती हैं। उन्हें तो सबसे बड़ी यही शिकायत है कि उन्हें नफ़रत या दयाकी दृष्टिसे क्यों देखा जाय! उनके तौर-तरीक़े अगर सचमुच दोषपूर्ण हों तो वे उन्हें सुधारनेके लिए तैयार हैं; लेकिन उनकी मलामत करनेसे पहले उनके दोषको अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिए। इस सम्बन्धमें वे न तो स्त्रियोंके प्रति शिष्टता-की झूठी भावनाकी छायाका ही सहारा लेना चाहती हैं, न वे न्यायाधीश द्वारा मनमाने तौरपर अपनी निन्दाकी जानेको चुपचाप वर्दाश्त करनेके लिए ही तैयार हैं। सचाईका सामना तो करना ही चाहिए; आजकल-की लड़कीमें, जिसे कि आपके कथनानुसार अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक वनना प्रिय है, उसका मुक़ाबला करने जितना साहस पर्याप्त रूपमें विद्यमान है।'

मुझे पत्र भेजनेवालियोंको शायद यह पता नहीं है कि चालीस वरससे ज्यादा हुए तब दक्षिण अफ्रीकामें मैंने भारतीय स्त्रियोंकी सेवाका कार्य करना शुरू किया था, जबकि इनमेंसे किसीका शायद जन्म न हुआ होगा। मैं तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं सकता जो नारीत्वके लिए अपमानजनक हो। स्त्रियोंके लिए इज्जतकी सम्भावना मेरे अन्दर इतनी ज्यादा है कि मैं उनकी वुराईका विचार ही नहीं कर सकता। स्त्रियां तो, जैसा कि अंग्रेजीमें उन्हें कहा गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध हैं। फिर मैंने जो लेख

लिखा वह विद्यार्थियोंकी निर्लज्जता पर प्रकाश डालनेके लिए था, लड़कियोंकी कमज़ोरीका ढोल पीटनेके लिए नहीं। अलबत्ता रोगका निदान बतलानेके लिए, अगर मुझे उसका ठीक इलाज बतलाना हो तो, मुझे उन सब बातोंका उल्लेख करना लाज़िमी था, जो रोगकी तहमें हों।

आधुनिक या आजकलकी लड़कीका एक खास अर्थ है। इसलिए अपनी बात कुछ ही तक सीमित रखनेका सवाल नहीं था। यह याद रहे कि अंग्रेज़ी शिक्षा पाने वाली सभी लड़कियां आधुनिक नहीं हैं। मैं ऐसी लड़कियोंको जानता हूं, जिन्हें 'आधुनिक लड़की' की भावनाने स्पर्श तक नहीं किया; लेकिन कुछ ऐसी ज़रूर हैं जो आधुनिक लड़कियां बन गई हैं। मैंने जो कुछ लिखा वह भारतकी विद्यार्थिनियोंको यह चेतावनी देनेके ही लिए था कि वे आधुनिक लड़कियोंकी नक़ल करके उस समस्याको और जटिल न बनाएं जो पहले ही भारी खतरा हो रही है; क्योंकि जिस समय मुझे यह पत्र मिला, उसी समय मुझे आन्ध्रसे भी एक विद्यार्थिनीका पत्र मिला था, जिसमें आन्ध्रके विद्यार्थियोंके व्यवहारकी कड़ी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन उसने किया था वह लाहौरकी लड़की द्वारा वर्णित व्यवहारसे भी बुरा था। आन्ध्रकी वह लड़की कहती है कि उसकी साथिन लड़कियां सादा पोशाक पहननेपर भी नहीं बच पातीं; लेकिन उनमें इतना साहस नहीं है कि वे उन लड़कोंके जंगलीपनका भंडाफोड़ कर दें जो कि जिस संस्थामें पढ़ते हैं उसके लिए कलंक-रूप हैं। आन्ध्र-यूनिवर्सिटीके अधिकारियोंका ध्यान मैं इस शिकायतकी ओर आकर्षित करता हूं।

पत्र भेजनेवाली इन ग्यारह लड़कियोंको मैं इस बातके लिए निमन्त्रित करता हूं कि वे विद्यार्थियोंके जंगली व्यवहारके खिलाफ जहाद बोल दें। ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद अपने-आप करते हैं। लड़कियोंको पुरुषके जंगली व्यवहारसे अपनी रक्षा करनेकी कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
१८ फरवरी १९३९

: ३३ :

ब्रह्मचर्यकी व्याख्या

(मादरण मुक़ामपर एक अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए लोगोंके अनुरोधसे गांधीजीने ब्रह्मचर्यपर लम्वा प्रवचन किया। उसका सार यहां दिया जाता है।—सं०)

"आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्यके विपयपर कुछ कहूं। कितने ही विषय ऐसे हैं जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपान्त ही लिखता हूं। और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूं; क्योंकि यह विपय ही ऐसा है कि कहकर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्यके विपयमें सुनना चाहते हैं। 'समस्त इन्द्रियोंका संयम', विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्यकी है, उसके विपयमें नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्यको भी शास्त्रकारोंने वड़ा कठिन वताया है। यह वात ९९ फ़ीसदी सच है, १ फ़ीसदी इसमें कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम, दूसरी इन्द्रियोंको संयममें नहीं रखते। उनमें मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वाको क़ब्जेमें रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्रके ज्ञाताओंका कथन है कि पशु जिस दर्जेतक ब्रह्मचर्यका पालन करता है उस दर्जेतक मनुष्य नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखनेपर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रियपर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छापूर्वक नहीं, स्वभावत: ही। केवल चारेपर अपनी गुजर करते हैं—सो भी महज़ पेट भरने लायक़ ही खाते हैं। वे ज़िन्दगीके लिए खाते हैं, खानेके लिए जीते नहीं हैं; पर हम तो इसके विलकुल विपरीत हैं। मां वच्चेको तरह-तरहके सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि वालकके साथ प्रेम दिखानेका यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन

चीजोंमें स्वाद डालते नहीं; बल्कि ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूखमें। भूखके वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमीको लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होंगे; पर हम तो अनेक चीजोंको खा-खाकर पेटको ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो पाता। जो आंखें ईश्वरने हमें देखनेके लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखनेकी वस्तुओंको देखना नहीं सीखते। 'माताको क्यों गायत्री न पढ़ना चाहिए और बालकोंको वह क्यों गायत्री सिखावे ?' इसकी छान-बीन करनेकी अपेक्षा उसके तत्त्व—सूर्योपासनाको समझकर सूर्योपासना करावे तो क्या अच्छा हो। सूर्यकी उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासनाके मानी क्या हैं ? अपना सिर ऊंचा रखकर, सूर्य-नारायणके दर्शन करके, आंखकी शुद्धि करना। गायत्रीके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदयमें जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वरके जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाशसे बढ़कर भव्य रंगभूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालककी आंखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है ? बल्कि माताके भावोंमें तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप तो लड़का शायद बड़ा अधिकारी होगा; पर इस बातका कौन विचार करता है कि घरमें जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चोंको मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है! मां-बाप हमारे शरीरको ढंकते हैं, सजाते हैं; पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है ? कपड़े बदनको ढकनेके लिए हैं, सर्दी-गर्मीसे रक्षा करनेके लिए हैं, सजानेके लिए नहीं। जाड़ेसे ठिठुरते हुए लड़केको जब हम अंगीठीके पास धकेलेंगे, अथवा मुहल्लेमें खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेतमें कामपर छोड़ देंगे, तभी उसका शरीर वज्रकी तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है उसका शरीर वज्रकी तरह जरूर होना चाहिए। हम तो बच्चोंके शरीरका नाश कर डालते हैं। हम उसे जो घर में रखकर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी चमड़ीमें उस तरहकी

गरमी आती है जिसे हम छाजनकी उपमा दे सकते हैं। हमने शरीरको दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़ेकी बात। फिर घरमें तरह-तरहकी बातें करके हम उनके मनपर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादीकी बातें किया करते हैं, और इसी क़िस्मकी चीज़ें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज़ जंगली ही क्यों न हो गये? मर्यादा तोड़नेके अनेक साधनोंके होते हुए भी मर्यादाकी रक्षा हो सकती है। ईश्वरने मनुष्यकी रचना इस तरहसे की है कि पतनके अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्यके रास्तेसे ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनियाके साथ शारीरिक मुक़ाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी—आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए हर क़िस्मके उपायोंसे काम लेना, हर तरहकी चीज़ें खाना, शारीरिक मुक़ाबले करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपनमें मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो अंग्रेज़ोंकी तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। जापानको भी जब दूसरे देशके साथ मुक़ाबला करनेका समय आया तब वहां गो-मांस-भक्षणको स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकारसे शरीरको तैयार करनेकी इच्छा हो तो इन चीज़ोंका सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधनसे शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने-पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्रमें मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्रका मज़मून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसका नाम है? और जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खांसी होती है और न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डॉक्टर लोग

कहते हैं कि नारंगीका बीज आंतमें रह जानेसे भी अपेंडिसाइटिस होता है; परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीजोंको अपने-आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज़ हज़म न कर सका हूंगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रख सकती है? पर उसकी आंतमें इतनी शक्ति स्वाभाविक तौरपर ही होती है। इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभवकी कुछ बूंदें पेश की हैं जो ब्रह्मचर्यकी सीमा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ यह नहीं कि मैं स्त्रीको स्पर्श न करूं, अपनी बहनका स्पर्श न करूं; पर ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे किसी प्रकारका विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि काग़ज़को स्पर्श करनेसे नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ीका है। जिस निर्विकार दशाका अनुभव जब हम किसी बड़ी सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करें तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यों न हो; पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रमसे भी बढ़कर है; पर उसे हमने गिरा दिया। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और संन्यासका तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था भी हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है कि उसका अनुकरण करके तो आप पांच सौ वर्षों तक भी पठानोंका मुक़ाबला न कर सकेंगे। दैवी-मार्गका अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानोंका मुक़ाबला हो सकता

है; क्योंकि दैवी साधनसे आवश्यक मानसिक परिवर्त्तन एक क्षणमें हो सकता है; पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्गका अनुसरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्व-जन्मका पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

हिन्दी नवजीवन,
२६ जनवरी १९२५

: ३४ :

विवाह-संस्कार

[गांधी-सेवा-संघके हुदलीमें हुए तृतीय अधिवेशनमें गांधीजीकी पोती तथा श्री महादेव देसाईकी बहनका विवाह हुआ था।

अपने स्वभावके विपरीत, गांधीजी ने उस दिन सबकी उपस्थिति में वर-वधुओंसे जो कहना था वह नहीं कहा; बल्कि खानगी तौरपर उन्हें उपदेश दिया। किन्तु गांधीजीके वे विचार सभी दम्पतियोंके लिए हितकर हैं, अतः मैं उन विचारोंको नीचे सारांश रूपमें देनेका, जहांतक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न करता हूं। —म० दे०]

"तुम्हें यह जानना ही चाहिए कि मैं इन संस्कारोंमें उसी हदतक विश्वास करता हूं, जहांतक कि ये हमारे अन्दर कर्त्तव्य-पालनकी भावना-को जगाते हैं। जबसे मैंने अपने सम्बन्धमें विचार करना शुरू किया, तभी-से मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मंत्रोंका उच्चारण किया, तभीसे मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मंत्रोंका उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओंको लिया है, वे सब-की-सब संस्कृतमें थीं; पर तुम्हारे लिए उन सबका अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृतका हमने इसलिए आश्रय लिया; क्योंकि मैं जानता हूं कि संस्कृत शब्दोंमें शक्ति है, जिसके प्रभावके नीचे आना मनुष्य पसन्द ही करेगा।

"विवाह-संस्कारके समय पतिने जो इच्छाएं प्रकट की थीं, उनमें एक यह भी है कि वधू अच्छे निरोगी पुत्रकी जननी बने। इस कामनासे मुझे आघात नहीं पहुंचा। इसके माने यह नहीं हैं कि सन्तान पैदा करना लाजिमी है; पर इसका अर्थ यह है कि यदि संतानकी आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म-भावनासे विवाह करना जरूरी है। जिसे सन्तानकी जरूरत नहीं, उसे

विवाह करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। विषय-भोगकी तृप्तिके लिए किया हुआ विवाह विवाह नहीं वह तो व्यभिचार है। इसलिए आजके विवाह-संस्कारोंका अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुष दोनोंकी ही सन्ततिके लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हें सम्भोगकी अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। इसलिए इस कामको प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना और विषय-सुखकी प्राप्तिके लिए साधारणतया स्त्री-पुरुषमें जो प्रेमासक्ति देखनेमें आती है, उसका इस पवित्र कल्पनामें नाम भी नहीं। अगर दूसरी सन्तान नहीं चाहिए, तो स्त्री-पुरुषका ऐसा सम्भोग जीवनमें केवल एक ही बार होगा। जो दम्पति चारित्र्य और शरीरसे स्वस्थ नहीं हैं, उन्हें सम्भोग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, और अगर वे ऐसा करते हैं तो वह 'व्यभिचार' है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्तिके लिए है तो तुम्हें यह चीज़ भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही संस्कार पवित्र अग्निकी साक्षीमें हुआ है। तुम्हारे अन्दर जो भी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहमसे तुम्हें अलग रखनेके लिए मैं तुमसे कहूंगा। यह वहम दुनियामें आजकल ज़ोरोंसे फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और संयम ग़लत तरीक़े हैं, और विषय-वासनाकी अबाध तृप्ति और स्वच्छन्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुननेमें नहीं आया। हो सकता है कि तुम आदर्शतक न पहुंच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो; पर इससे आदर्शको नीचा न कर देना, अधर्मको धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलताके क्षणोंमें मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसरकी स्मृति तुम्हें डांवाडोल न होने दे, और तुम्हें इन्द्रिय-निग्रहकी ओर ले जाय। विवाह-का अर्थ ही इन्द्रिय-निग्रह और काम-वासनाका दमन है। अगर विवाह-का कोई दूसरा अर्थ है तो वह स्वार्पण नहीं; किन्तु सन्तति-प्राप्तिको छोड़कर किसी दूसरे प्रयोजनसे किया हुआ विवाह विवाह नहीं है। विवाहने तुम्हें मैत्री और समानताके स्वर्ण-सूत्रसे बांध दिया है। पतिको अगर स्वामी कहा गया है तो पत्नीको 'स्वामिनी'। एक-दूसरेके दोनों सहायक हैं, जीवनके

समस्त कार्य और कर्तव्य पूरे करनेमें वे एक-दूसरेका सहयोग करने वाले हैं। लड़को! तुमसे मैं यह कहूंगा कि अगर ईश्वरने तुम्हें अच्छी बुद्धि और उज्ज्वल भावनाएं बख्शी हैं तो तुम अपनी पत्नियोंमें भी इन सद्गुणोंका प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हें मदद देना और उन्हें मार्ग दिखाना; पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हें गलत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीचमें विचार, वचन और कर्मका पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदयकी बात एक-दूसरेसे न छिपाओ तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दम्भी न बनना। जिस कामका करना तुम्हारे लिए असम्भव हो, उसे पूरा करनेके निष्फल प्रयत्नोंमें अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नहीं होता। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है, वह निग्रह नहीं किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्तिकी शक्ति तो दिन-दिन बढ़ती है और शान्तिके वह अधिकाधिक समीप पहुंचता जाता है। आत्म-निग्रहकी सबसे पहली सीढ़ी विचारोंका निग्रह है। अपनी मर्यादाको समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैंने तो तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है—एक समकोण खींच दिया है। अपनी शक्तिके अनुसार जितना तुमसे हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्शतक पहुंचनेका करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्मका कोई कारण नहीं। मैंने तो तुम्हें सिर्फ यह बतलाया है कि यज्ञोपवीत-संस्कारकी तरह विवाह भी एक स्वार्पण-संस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुमसे जो कहा है, उससे भयभीत न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्मकी पूर्ण एकताको अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचारमें जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तुमें नहीं। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचार का। संसार एक महान् प्रबल विचारका ही परिणाम है, और जहां विचार प्रबल और पवित्र है वहां परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हूं कि तुम एक उच्चादर्शका अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हें

कोई भी प्रलोभन हानि नहीं पहुंचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।

"जिन विधियोंको तुम्हें समझाया गया है, उन्हें याद रखना। 'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधिको ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संस्कार मधुसे परिपूर्ण है, ज़रूरत सिर्फ यह है कि जब बाक़ी सब लोग उसमें से अपना हिस्सा ले लें, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्यागसे ही आनन्द मिलता है।"

"लेकिन," एक वरने पूछा, "अगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नहीं करना चाहिए?"

"निश्चय ही नहीं", गांधीजीने कहा, "आध्यात्मिक विवाहोंमें मेरा विश्वास नहीं है। कई ऐसे उदाहरण ज़रूर मिलते हैं कि जिनमें पुरुषोंने शारीरिक सम्भोगका कोई खयाल न कर सिर्फ स्त्रियोंकी रक्षा करनेके विचारसे ही विवाह किये; लेकिन यह निश्चय है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम विरले ही हैं। पवित्र वैवाहिक जीवनके बारेमें मैंने जो-कुछ लिखा है, वह सब तुम्हें ज़रूर पढ़ लेना चाहिए। मुझपर तो, मैंने महाभारतमें जो कुछ पढ़ा है, दिन-पर-दिन उसका ज़्यादह-से-ज़्यादह असर पड़ता जा रहा है। उसमें व्यासके नियोग करनेका वर्णन है। उसमें व्यासको सुन्दर नहीं बताया है, बल्कि वह तो इससे विपरीत थे। उनकी शक्ल-सूरतका उसमें जो वर्णन आया है, उससे मालूम पड़ता है कि देखनेमें वह बड़े कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शनके लिए कोई हाव-भाव भी उन्होंने नहीं बताये? बल्कि सम्भोगसे पहले अपने सारे शरीर पर उन्होंने घी चुपड़ लिया था। उन्होंने सम्भोग किया वह विषय-वासनाकी पूर्तिके लिए नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्तिके लिए किया था। सन्तानकी इच्छा बिलकुल स्वाभाविक है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर सम्भोग नहीं करना चाहिए।

मनुने पहली सन्ततिको धर्मज अर्थात् धर्म-भावनासे उत्पन्न बताया है और उसके बाद पैदा होनेवालेको कामज अर्थात् कामवृत्तिके फल-स्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार-रूपमें वैषयिक सम्बन्धोंका यही विधान है। और 'विधान ही ईश्वर है और विधान या नियमका पालन ही ईश्वर-

की आज्ञाको मानना है।' यह याद रखो कि तीन वार तुमसे यह वचन लिया गया है कि 'किसी भी रूपमें मैं इस विधानका भंग नहीं करूंगा।' अगर मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमें ऐसे मिल जायं, जो इस विधानसे बन्धनेको तैयार हों तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषोंकी एक जाति-की-जाति पैदा हो जायगी।"

: ३५ :

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्रमें प्रकाशित एक अत्यन्त वीभत्स पुस्तकके विज्ञापनकी कतरन एक बहनने मुझे भेजी है और लिखा है :

'....के पृष्ठों पर नज़र डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखनेमें आया। मैं नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयालमें इसकी तरफ़ नज़र डालनेका आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आपसे 'अश्लील विज्ञापनों' के बारेमें बात की थी। मेरी यह बड़ी ही इच्छा है कि इस विषयमें आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उस क़िस्मकी पुस्तकोंकी आज बाज़ारमें बाढ़-सी आ रही है, यह बिलकुल सच्ची बात है; पर....जैसे जवाबदार पत्रोंके लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकोंकी बिक्रीको प्रोत्साहन दें? इन चीज़ोंसे मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मैं सिवा आपके और किसीको लिख नहीं सकती। ईश्वरने स्त्रीको एक विशेष उद्देश्यके लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लम्पटताको उत्तेजन देनेके लिए किया जाय, यह चीज़ इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दोंसे प्रकट नहीं की जा सकती...। मैं चाहती हूं कि इस सम्बन्धमें भारतके प्रमुख अखबारों और मासिक-पत्रोंकी क्या जवाबदारी है, इसके बारेमें आप लिखें। आपके पास आलो-चनाके लिए भेज सकूं, ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नहीं है।"

इस विज्ञापनमें से कुछ भी अंश मैं यहां उद्धृत करना नहीं चाहता। पाठकोंसे सिर्फ इतना ही कहता हूं कि जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उसमें-के व्यंजित लेखोंका वर्णन करनेमें जितनी अश्लील भाषाका उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तकका नाम 'स्त्रीके शरीरका

सौन्दर्य' है; और विज्ञापन देनेवाली फर्म पाठकोंसे कहती है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधूके लिए नया ज्ञान' और 'सम्भोग अथवा संभोगीको कैसे रिझाया जाय?' नामक यह दो पुस्तकें और मुफ्त दी जायंगी।

इस क़िस्मकी पुस्तकोंका विज्ञापन करने वालोंको मैं किसी तरह रोक सकता हूं या पत्र-सम्पादकों और प्रकाशकोंसे उनके अखबारों द्वारा मुनाफ़ा उठानेका इरादा मैं छुड़वा सकता हूं, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती हैं तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनोंके प्रकाशकोंसे मैं चाहे जितनी अपील करूं उससे कोई मतलब निकलनेका नहीं; किन्तु मैं इस पत्र लिखनेवाली बहनसे और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनोंसे इतना कहना चाहता हूं कि वे बाहर मैदानमें आयं और जो काम खास करके उनका है, और जिसके लिए उनमें खास योग्यता है, उस कामको वे शुरू कर दें। अक्सर देखनेमें आया कि किसी मनुष्यको खराब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्रीको 'अबला' कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहनेका अर्थ अगर यह हो कि स्त्रीमें पुरुषकी जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रामें नहीं है जितनी कि पुरुषमें होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है; पर यह चीज़ तो स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा पुनीत बनानेवाली है; और स्त्री पुरुषकी अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करनेमें निर्बल है तो कष्ट सहन करनेमें बलवान है। मैंने स्त्रीको त्याग और अहिंसाकी मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्वकी रक्षाके लिए पुरुषपर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुषने स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही रामने सीताके या पांच पाण्डवोंने द्रौपदीके शीलकी रक्षा नहीं की। इन दोनों सतियोंने अपने सतीत्वके बलसे ही अपने शीलकी रक्षा की। कोई भी मनुष्य बग़ैर अपनी सम्मतिके अपनी इज्जत-आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्रीको बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे

उस स्त्रीके शील या सतीत्वका लोप नहीं होगा; इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुषको जड़ बना देनेवाली दवा खिला दे और उससे अपना मन चाहा कराये तो इससे उस पुरुषके शील या चारित्र्यका नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषोंके सौन्दर्यकी प्रशंसामें पुस्तकें बिलकुल नहीं लिखी गई। तो फिर पुरुषकी विषय-वासना उत्तेजित करनेके लिए ही साहित्य हमेशा क्यों तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुषने स्त्रीको जिन विशेषणोंसे भूषित किया है उन विशेषणोंको सार्थक करना उसे पसन्द है? स्त्रीको क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीरके सौन्दर्यका पुरुष अपनी भोग-लालसाके लिए दुरुपयोग करे? पुरुषके आगे अपनी देहकी सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हां, तो किसलिए? मैं चाहता हूं कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिलसे पूछें। ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्यसे उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीज़ोंके लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षणमें वे इन चीज़ोंको बन्द करा देंगी। स्त्रीमें जिस प्रकार बुरा करनेकी, लोकका नाश करनेकी शक्ति है, उसी प्रकार भला करनेकी लोक-हित साधन करनेकी शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है। यह भान अगर स्त्रीको हो जाय तो कितना अच्छा हो। अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अपना तथा पुरुषका—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—जन्म सुधार सकती है, और दोनोंके ही लिए इस संसारको अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र-राष्ट्रके बीचके पागलपन भरे युद्धोंसे और इससे भी ज़्यादा पागलपन-भरे समाज-नीतिकी नींवके विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्धोंसे अगर समाजको अपना संहार नहीं होने देना है, तो स्त्रीको पुरुषकी तरह नहीं, जैसे कि कुछ स्त्रियां करती हैं; बल्कि स्त्रीकी तरह अपना योग देना ही होगा। अधिकांशतः बिना किसी कारणके ही मानव-प्राणियोंके संहार करनेकी जो शक्ति पुरुषमें है उस शक्तिमें उसकी हमसरी करनेसे स्त्री मानव-जातिको सुधार नहीं सकती। पुरुषकी जिस भूलसे पुरुषके साथ-साथ स्त्रीका भी विनाश होनेवाला है उस भूलमेंसे पुरुषको बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्रीको समझ लेना चाहिए। यह वाहियात

विज्ञापन तो सिर्फ़ यही बताता है कि हवाका रुख किस तरफ़ है। इसमें बेशर्मीके साथ स्त्रीका अनुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनियाकी जंगली जातियोंकी स्त्रियोंके शरीर-सौन्दर्य' को भी इसने नहीं छोड़ा।

हरिजन सेवक,
२१ नवम्बर १९३६

: ३६ :

अश्लील विज्ञापनोंको कैसे रोका जाय

अश्लील विज्ञापन-सम्बन्धी मेरा लेख देखकर एक सज्जन लिखते हैं—

'जो अखबार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीज़ोंके इश्तिहार देते हैं उनके नाम ज़ाहिर करके आप अश्लील विज्ञापनका प्रकाशन रोकनेके लिए वहुत-कुछ कर सकते हैं।"

इन सज्जनने जिस सेंसरशिपकी मुझे सलाह दी है उसका भार मैं नहीं ले सकता; लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मैं सुझा सकता हूं। जनताको अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखवारों या मासिक-पत्रोंमें आपत्तिजनक विज्ञापन निकलें उनके ग्राहक यह कर सकते हैं कि उन अखबारोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करें और अगर फिर भी वे ऐसा करनेसे बाज़ न आयें तो उन्हें खरीदना बन्द कर दें। पाठकोंको यह जानकर खुशी होगी कि जिस बहनने मुझे अश्लील विज्ञापनोंकी शिकायत भेजी थी, उसने इस दोपके भागी मासिक-पत्रके सम्पादकको भी इस बारेमें लिखा था, जिसपर उन्होंने इस भूलके लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगेसे न छापनेका वादा किया है।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारेमें जो-कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रोंने भी समर्थन किया है। 'निस्पृह' (नागपुर) के सम्पादक लिखते हैं :

"अश्लील विज्ञापनोंके बारेमें 'हरिजन' में आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानीके साथ पढ़ा। यही नहीं, वल्कि मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' में दिया है और एक छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उसपर मैंने लिखी है।

मैं बतौर नमूनेके एक विज्ञापन इस पत्रके साथ भेज रहा हूं, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरहसे अनैतिक तो है ही। इस विज्ञापनमें साफ झूठ है। आमतौर पर गांव वाले ही ऐसे विज्ञापनोंके चक्करमें फंसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन लेनेसे इन्कार करता रहा हूं और इस विज्ञापनदाताको भी यही लिख रहा हूं। जैसे अखबारमें निकलने वाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादककी निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनोंपर नजर रखना भी उसका कर्त्तव्य है। और कोई सम्पादक अपने अखबारका ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता, जो भोले-भाले देहातियोंकी आंखोंमें धूल झोंककर उन्हें ठगना चाहते हैं।

हरिजन सेवक,

१९ दिसम्बर १९३६

परिशिष्ट

: १ :

सन्तति-निरोधकी हिमायतिन

दरिद्रनारायणकी सेवामें अपना सब-कुछ समर्पण कर देनेवाले बूढ़े किसानसे सर्वथा विपरीत, इंग्लैण्डकी एक श्रीमती हाउ-मार्टिन हैं, जो कृत्रिम सन्तति-निरोधकी ज़बर्दस्त प्रचारिका हैं और भारतके ग़रीबोंकी मददके लिए अपना सन्देश लेकर भारत पधारी हैं। गांधीजीके पास वह इस इरादेसे आई हैं कि या तो उन्हें अपने विचारोंका बना लें या खुद उनके विचारोंपर आ जायं। निस्सन्देह, वह हिन्दुस्तानमें पहली ही बार आई हैं और यहां के ग़रीबोंकी हालत अभी उन्होंने मुश्किलसे ही देखी होगी, इसलिए ब्रिटेनकी गन्दी बस्तियोंके अपने अनुभवकी ही उन्होंने चर्चा की और उन 'अबलाओं' का बड़ा पक्ष लिया, जिन्हें कि सशक्त पुरुषके आगे झुकना पड़ता है।

लेकिन इस पहली ही दलीलपर गांधीजीने उन्हें आड़े हाथों लिया। 'कोई स्त्री अबला नहीं है।' गांधीजी ने कहा, "कमज़ोर-से-कमज़ोर स्त्री भी पुरुषसे ज़्यादा बल रखती है और अगर आप भारतके गांवोंमें चलें तो मैं यह बात आपको दिखला देनेके लिए पूरी तरह तैयार हूं। वहां प्रत्येक स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माईका जाया कोई ऐसा लाल नहीं जो उसपर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी पत्नीके साथके खुद अपने अनुभवसे मैं कह सकता हूं, और यह याद रखिए कि मेरा उदाहरण कोई विरला ही नहीं है। सच तो यह है कि झुकनेके बजाय मर जानेकी भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्रीको अपनी दुष्ट चेष्टा-

के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो परस्परकी रजामन्दीकी बात है। स्त्री-पुरुष दोनोंमें ही पशुत्व और देवत्वका सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमेंसे पशुत्वको दूर कर सकें तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन", श्रीमती हाउ-मार्टिनने पूछा, "अगर पुरुष अधिक बच्चोंसे बचनेके लिए अपनी पत्नीको छोड़कर पर-स्त्रीके पास जाय तो बेचारी पत्नी क्या करे?"

"यह तो आप अपनी बातें बदल रही हैं; लेकिन यह याद रखिए कि अगर आप अपनी दलीलको निर्भ्रान्त न रखेंगी तो आप जरूर गलत परिणाम-पर पहुंचेंगी। व्यर्थकी कल्पनाएं करके पुरुषको पुरुषसे कुछ और तथा स्त्रीको स्त्रीसे अन्यथा बनानेकी कोशिश न कीजिए। आपके सन्देशका आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिए। जब मैंने यह कहा कि सन्तति-निरोधका आपका प्रचार काफ़ी फैल चुका है, तब इस विनोदके पीछे कुछ गम्भीरता थी; क्योंकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष हैं जो समझते हैं कि सन्तति-निरोधमें ही हमारी मुक्ति है। इसलिए मैं आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूं।"

"मैं इसमें संसारकी मुक्ति नहीं देखती", श्रीमती हाउ-मार्टिनने कहा, "मैं तो सिर्फ यही कहती हूं कि सन्तति-निरोधका कोई रूप अख्तियार किये बगैर प्रजाकी मुक्ति नहीं है। आप ऐसा एक तरीकेसे करेंगे, मैं दूसरे तरीकेसे करूंगी। आपके तरीकेका भी मैं प्रतिपादन करती हूं; लेकिन सभी हालतोंमें नहीं। आप तो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तुको ऐसा समझते हैं मानों वह कोई आपत्तिजनक चीज हो; पर यह याद रखिए कि दो व्यक्ति जब नये जीवनका निर्माण करते जाते हैं तो वे पशुत्वसे ऊपर उठकर देवत्वके अत्यन्त निकट होते हैं। इस क्रियामें कोई बात ऐसी है जो बड़ी सुन्दर है।"

"यहां भी आप भ्रममें हैं", गांधीजीने कहा, "नये जीवनका निर्माण देवत्वके अत्यन्त निकट है, इस बातको मैं मानता हूं। मैं जो-कुछ चाहता हूं वह तो यही है कि यह दैवी रूपमें ही किया जाय, मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नये जीवनका निर्माण करने यानी सन्तानोत्पत्तिके सिवा और किसी

इच्छासे सम्भोग न करें ? लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शान्त करनेके लिए ही सम्भोग करें तव तो वे शैतानियतके ही वहुत नज़दीक होते हैं। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस वातको भूल जाता है कि वह देवत्वके निकटतम है, वह अपने अन्दर विद्यमान पशु-वासनाके पीछे भटकने लगता है और पशुसे भी वदतर वन जाता है।"

"लेकिन पशुत्वकी आपको क्यों निन्दा करनी चाहिए ?"

"मैं निन्दा नहीं करता। पशु तो, उसके लिए कुदरतने जो नियम वनाये हैं, उनका पालन करता है। सिंह अपने क्षेत्रमें एक श्रेष्ठ प्राणी है और मुझको खा जानेका उसे पूरा अधिकार है; लेकिन मेरी यह विशेपता नहीं है कि मैं पंजे वढ़ाकर आपके ऊपर झपटूं। मैं ऐसा करूं तो अपनेको हीन वनाकर पशुसे भी वदतर वन जाऊंगा।"

"मुझे अफसोस है," श्रीमती हाउ-मार्टिनने कहा, "मैंने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नहीं किये। इस वातको मैं स्वीकार करती हूं कि अधिकांश मामलोंमें इससे उनकी मुक्ति नहीं होगी; लेकिन यह ऐसी वात ज़रूर है जिससे जीवन ऊंचा वनेगा। मेरी वात आप समझ गये होंगे, हालांकि मुझे शक है कि मैं अपनी वात विलकुल स्पप्ट नहीं कर पाई हूं।"

"नहीं-नहीं, मैं आपकी अव्यवस्थितताका कोई वेजा फायदा नहीं उठाना चाहता। हां, यह ज़रूर चाहता हूं कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ लें। ग़लतफ़हमियोंपर न चलिए। उपरि-मार्ग और अधो-मार्गमेंसे कोई एक आदमीको ज़रूर चुनना होगा; लेकिन उसमें पशुत्वका अंश होनेके कारण वह उपरि-मार्गके वदले अधो-मार्ग उसके सामने सुन्दर आवरणसे परिवेष्टित हो। सद्गणके परदेमें पाप सामने आने पर मनुष्य आसानीसे उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम सन्तति-निरोधके हिमायती) यही कर रहे हैं। मैं अगर विलासताका प्रचार करना चाहूं तो, मैं जानता हूं, मनुष्य आसानीसे उसे ग्रहण कर लेंगे। मैं जानता हूं कि आप जैसे लोग अगर निस्स्वार्थ भावसे उत्साहके साथ अपने सिद्धान्तके प्रचारमें लगे रहें तो ज़ाहिरा तौर पर शायद आपको विजय भी मिल जाय; लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि ऐसा करके आप निश्चित रूपसे मृत्युके

मार्गपर पहुंचेंगे—इसमें शक नहीं कि ऐसा आप करेंगे इस बातको बिल्कुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे हैं। अधो-मार्गकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलीलकी जरूरत नहीं होती। यह तो हमारे अन्दर मौजूद ही है, और अगर हम इस पर रोक लगाकर इसे नियंत्रित न रखें तो रोग और महामारीका खतरा है।"

श्रीमती हाउ-मार्टिनने जो अबतक देवत्व और शैतानियतके बीच भेदको स्वीकार करती मालूम पड़ती थीं, कहा कि ऐसा कोई भेद नहीं है और लोग समझते हैं उससे कहीं ज्यादा वे परस्पर-सम्बद्ध हैं। सन्तति-निरोधकी सारी फिलासफीके पीछे दरअसल यही बात है, और सन्तति-निरोधके हिमायती यह भूल जाते हैं कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती हैं कि देव और पशु एक ही चीज है? क्या आप सूर्यमें विश्वास करती हैं? अगर करती हैं तो क्या आप यह नहीं सोचतीं कि छायामें भी आपको विश्वास करना ही चाहिए?" गांधीजीने पूछा।

"आप छायाको शैतान क्यों कहते हैं?"

"आप चाहें तो उसे ईश्वरेतर कह सकती हैं।"

"मैं यह नहीं समझती कि छायामें 'ईश्वरेतर' नहीं है। जीवन तो सर्वत्र है।"

"जीवनका प्रभाव जैसी भी कोई चीज है। क्या आप जानती हैं कि हिन्दू लोग अपने-अपने प्रियतमों तकके शरीरको उनकी जीवन-ज्योतिके बुझते ही जल्द-से-जल्द जलाकर भस्म कर देते हैं? यह ठीक है कि समस्त जीवनमें मूलभूत एकता है; लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि उस विभिन्नतामें प्रवेश करके उसके अन्दर समाविष्ट एकताका पता लगायें; लेकिन बुद्धिके द्वारा नहीं, जैसा कि आप प्रयत्न करनेकी कोशिश कर रही हैं। जहां सत्य है, वहां असत्य भी जरूर होना चाहिए; इसी तरह जहां प्रकाश है, वहां छाया भी जरूर होगी। जबतक आप तर्क और बुद्धि ही नहीं, बल्कि शरीरका भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दें तबतक आप इस व्यापक ज्ञानकी अनुभूति नहीं कर सकतीं।"

श्रीमती हाड-मार्टिन भौंचक्की रह गईं। उनकी मुलाक़ातका समय बीता जा रहा था; लेकिन गांधीजीने कहा, "नहीं, मैं आपको और समय देनेके लिए भी तैयार हूं, लेकिन इसके लिए आपको वर्धा आकर मेरे पास ठहरना होगा। मैं भी आपसे कम उत्साही नहीं हूं, इसलिए जबतक आप मुझे अपने विचारोंका न बना लें या खुद मेरे विचारों पर न आ जायं तबतक आपको हिन्दुस्तानसे नहीं जाना चाहिए।"

यह आनन्दप्रद वार्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य-क्रमोंके कारण यहीं रोकनी पड़ी, मुझे असीसीके सन्त फ्रांसिसके इन महान शब्दोंका स्मरण हो आया—"प्रकाशने देखा और अन्धकार लुप्त हो गया। प्रकाशने कहा, "मैं वहां जाऊंगा ?" शान्तिने दृष्टि फेंकी और युद्ध भाग गया, शान्तिने कहा, "मैं वहां जाऊंगी।" प्रेम उदित हुआ और घृणा उड़ गई। प्रेमने कहा, "मैं वहां जाऊंगा।" और यह बात सूर्य-प्रकाशकी भांति सर्वत्र फैलकर हमारे अंतरमें प्रवेश कर गई।

—महादेव देसाई

: २ :

पाप और सन्तति-निग्रह

गांधीजीके ध्यानमें सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते हैं और स्वप्न भी उन्हें इसी विषयके आते हैं। स्वामी योगानन्द नामके एक संन्यासी सोलह बरस अमेरिकामें रहकर अभी-अभी स्वदेश वापस आये हैं। गत सप्ताह रांची जाते हुए गांधीजीसे मिलनेके लिए वे यहां उतर पड़े और दो दिन ठहरे। उनके साथ गांधीजीका जो खासा लम्बा सम्वाद हुआ। उसमें भी उनके इस ग्राम-चिन्तनकी काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्मप्रचारके लिए अमेरिका गये थे और उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेशके द्वारा भारतवर्षका आध्यात्मिक सन्देश संसारको देनेका ही सब जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि "भारतवर्षके बलिदानसे ही जगत्का उद्धार होगा।"

गांधीजीके साथ उन्हें पाप, सन्तति-निग्रह इन दो विषयों पर चर्चा करनी थी। अमेरिकाके जीवनकी काली बाजू उन्होंने अच्छी तरह देखी थी और अमेरिकाके युवकों और युवतियोंके विलासितामय जीवनकी एक-एक बात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकके लेखक जज लिंडसेके साथ उनका वहां काफी निकटका परिचय था।

गांधीजीने कहा, "दुनियामें पाप क्यों है" इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। मैं तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही दे सकता हूं। जगत्में प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह जहां पुण्य है वहां पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टिसे हैं। ईश्वरके आगे तो पाप और पुण्य जैसी कोई चीज ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनोंसे ही परे है। हम गरीब ग्रामवासी उसकी लीलाका मनुष्यकी वाणी-में वर्णन करते हैं; पर हमारी भाषा ईश्वरकी भाषा नहीं है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण भी मनुष्यकी तोतली वाणीका है। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं इन बातोंमें पड़ता ही नहीं। ईश्वरके घरके गूढ़-से-गूढ़ भेद जाननेका भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जाननेकी हामी न भरूं। कारण यह है कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब जानकर क्या करूंगा! हमारे आत्म-विकासके लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर निरन्तर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासीका निरूपण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमें पापसे मुक्त क्यों नहीं कर देता?" स्वामीजी ने पूछा।

"मैं इस प्रश्नकी भी उधेड़-बुनमें नहीं पड़ना चाहता। ईश्वर और हम बराबर नहीं हैं। बराबरीवाले ही एक-दूसरेसे ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बड़े नहीं। गांववाले यह नहीं पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यों करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चित ही है।"

"आपके कहनेका आशय मैं अच्छी तरह समझता हूं। आपने यह बड़ी ज़ोरदार दलील दी है। पर ईश्वरको किसने बनाया?" स्वामीजीने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वयं ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतंत्र सत्तावान् है या लोक-तंत्रमें विश्वास करनेवाला? आपका क्या विचार है?"

"मैं इन बातोंपर बिलकुल विचार नहीं करता। मुझे ईश्वरकी सत्तामें तो हिस्सा लेना नहीं, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचारणीय नहीं हैं। मैं तो, मेरे आगे जो कर्त्तव्य है, उसे करके ही संतोष मानता हूं। जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यों हुई, इन सब प्रश्नोंकी चिन्तामें मैं क्यों पड़ूं?"

"ईश्वरने हमें बुद्धि तो दी है?"

"बुद्धि तो ज़रूर दी है; पर वह बुद्धि हमें यह समझनेमें सहायता

देती है कि जिन बातोंका हम ओर-छोर नहीं निकाल सकते उनमें हमें मायापच्ची नहीं करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासीमें अद्‌भुत व्यावहारिक बुद्धि होती है और इससे वह कभी इन पहेलियोंकी उलझनमें नहीं पड़ता।"

"अब मैं एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हूं। क्या आप यह मानते हैं कि पुण्यात्मा होनेकी अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढ़नेकी अपेक्षा नीचे गिरना आसान है।"

"ऊपरसे तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है कि पापी होनेकी अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियोंने कहा है सही कि नरकका मार्ग आसान है; पर मैं ऐसा नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि संसारमें अच्छे आदमियोंकी अपेक्षा पापी लोग अधिक हैं। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वयं पापकी मूर्त्ति बन जायगा; पर वह तो अहिंसा और प्रेमका साकार रूप है।"

"क्या मैं आपकी अहिंसाकी परिभाषा जान सकता हूं?"

"संसारमें किसी भी प्राणीको मन, वचन और कर्मसे हानि न पहुंचाना अहिंसा है।"

गांधीजीकी इस व्याख्यासे अहिंसाके सम्बन्धमें काफी लम्बी चर्चा हुई; पर उस चर्चाको मैं छोड़ देता हूं। 'हरिजन' और 'यंगइंडिया' में न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

"अब मैं दूसरे विषय पर आता हूं," स्वामीजीने कहा, "क्या आप सन्तति-निग्रहके मुक़ाबलेमें संयमको अधिक पसंद करते हैं?"

"मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीतिसे या पश्चिममें प्रचलित मौजूदा रीतियोंसे सन्तति-निग्रह करना आत्म-घात है। मैंने यहां जो 'आत्म-घात' शब्दका प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजाका समूल नाश हो जायगा। 'आत्म-घात' शब्दको मैं इससे ऊंचे अर्थमें लेता हूं। मेरा आशय यह है कि सन्तति-निग्रहकी ये रीतियां मनुष्योंको पशु-से बदतर बना देती हैं। यह अनीतिका मार्ग है।"

"पर हम यह कहां तक बर्दाश्त करें कि मनुष्य अविवेकके साथ सन्तान

पैदा करता ही चला जाय ? मैं एक ऐसे आदमीको जानता हूं, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें पानी मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चोंको बांट सके। बच्चोंकी संख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या इसमें आप पाप नहीं मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो सके यह पाप तो है ही; पर मैं यह मानता हूं कि अपने कर्मके फलसे छुटकारा पानेकी कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप है। इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

"तब लोगोंको यह सत्य बतानेका सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है!"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम संयमका जीवन बितावें। उपदेशसे आचरण ऊंचा है।"

"मगर पश्चिमके लोग हमसे पूछते हैं कि तुम लोग अपनेको पश्चिमके लोगोंसे अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगोंके मुकाबलेमें तुम्हारे यहां बालकोंकी मृत्यु अधिक संख्यामें क्यों होती है ? महात्माजी, आप मानते हैं कि मनुष्य अधिक संख्यामें संतान पैदा करें ?"

"मैं तो यह मानने वाला हूं कि सन्तान बिलकुल पैदा न की जाय।"

"तब तो सारी प्रजाका नाश हो जायगा।"

"नाश नहीं होगा, प्रजाका और भी सुन्दर रूपान्तर हो जायगा। पर यह कभी होनेका नहीं; क्योंकि हमें अपने पूर्वजोंसे यह विषय-वृत्तिका उत्तराधिकार युगानयुगसे मिला हुआ है। युगोंकी इस पुरानी आदतको काबूमें लानेके लिए बहुत बड़े प्रयत्नकी जरूरत है, तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है। पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके वह खुशीसे विवाह कर ले, पर विवाहित जीवनमें भी वह संयमसे रहे।"

"जन-साधारणको संयममय जीवनकी बात सिखानेकी क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है ?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूं, हमें पूर्ण संयमकी साधना

करनी चाहिए और जन-साधारणके बीच जाकर संयममय जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोड़कर ब्रह्मचर्यके साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरणका प्रभाव अवश्य ही जनता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रतके बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, वह अपने प्रत्येक कार्यमें संयमसे काम लेगा और सदा नम्र बनकर रहेगा।"

स्वामीजीने कहा, "मैं समझ गया। जन-साधारणको संयमके आनन्दका पता नहीं और हमें यह चीज उसे सिखानी है; पर मैंने पश्चिम-के लोगोंकी जिस दलीलके बारेमें आपसे कहा है, उस पर आपका क्या मत है?"

"मैं यह नहीं मानता कि हम लोगोंमें पश्चिमके लोगोंकी अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अधः-पतन न हो गया होता। किंतु इस बातसे कि पश्चिमके लोगोंकी उम्र औसतन हम लोगोंकी उम्रसे ज्यादा लम्बी होती है, यह साबित नहीं होता कि पश्चिममें आध्यात्मिकता है। जिसमें आध्यात्म-वृत्ति होती है, उसकी आयु अधिक लम्बी होनी चाहिए, यह बात नहीं है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।"

—महादेव देसाई

: ३ :

श्रीमती सेंगर और सन्तति-निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गांधीजीसे वर्धामें मिली थीं। गांधीजीने उन्हें अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोड़नेके पहले उन्होंने 'इलस्ट्रेटेड वीकली'में एक लेख लिखा है, जिसमें यह दिखाया गया है कि गांधीजीके साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हें कितना थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है। गांधीजीसे वह मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए आई थीं। "अगणित लोग आपको पूजते हैं, आपकी आज्ञा पर चलते हैं, फिर उनसे आप इस सम्बन्धमें क्यों नहीं कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मन्त्र क्यों नहीं देते कि जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखें?"—यह वे चाहती थीं। "देशके लाखों स्त्री-पुरुषोंका हित आपने किया है, तो फिर इस विषयमें भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी मांग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करनेके बाद जब वे तृप्त नहीं हुई तो दूसरे दिन भी उन्होंने उतनी देर तक बातें कीं। अब वे अपने लेखमें यह लिखती हैं कि गांधीजीको तो भारतकी महिलाओंका कुछ पता नहीं; क्योंकि उन्होंने तो सारी बात-चीतमें दो ऐसी बेहूदी बातें कीं कि जिनसे उनका अज्ञान प्रकट हो गया। गांधीजीने इस बात-चीतमें अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथाके कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषामें बताये थे; किन्तु उन सबका निष्कर्ष इस महिलाने यह निकाला कि गांधीजीको स्त्रियोंकी मनोवृत्तिका कुछ ज्ञान ही नहीं।

गांधीजीसे श्रीमती सेंगर स्त्रियोंके लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं, और वह मंत्र उन्हें मिला; पर वह तो असलमें यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गांधीजी मोहर लगा दें। इसलिए वह सुवर्ण मंत्र उन्हें दो कौड़ीका मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौड़ीका मालूम हुआ हो;

पर भारतकी स्त्रियोंको वह मंत्र देना जरूरी है, उन्हें यह कोड़ी मोलका मालूम नहीं पड़ेगा। गांधीजीने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है। मेरे और आपके तत्त्व-ज्ञानमें जमीन-आसमानका अन्तर है। इन सब बातोंको उस समय तो उन्होंने अच्छा महत्त्व दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमें उन्हें जरा भी महत्त्व नहीं दिया।

गांधीजीने तो पीड़ित स्त्रियोंके लिए यह सुवर्ण मंत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्रीके गजसे ही तमाम स्त्रियोंका माप निकाला है। दक्षिण अफ्रिकामें अनेक बहनोंसे मैं मिला—यूरोपीय और भारतीय दोनोंसे ही। भारतीय स्त्रियोंसे तो मैं सभीसे मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उनसे मैंने काम लिया था। सभीसे मैं तो डोंडी पीट-पीट कर कहता था कि तुम अपने शरीरकी—आत्माकी तरह शरीरकी भी—स्वामिनी हो, तुम्हें किसीके वशमें होकर नहीं बरतना है, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुमसे कुछ नहीं करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पतिसे 'ना' नहीं कह सकती। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषोंने उन्हें गिराया है, पुरुषोंने उनके पतनके लिए अनेक तरहके जाल रचे हैं, और उन्हें बांधनेकी जंजीरको भी उन्होंने सोनेकी जंजीरका नाम दे रखा है। इसलिए वे बेचारी पुरुषकी ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, वह यह कि वे पुरुषोंका प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छाके विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर सन्ततिका भार नहीं डाल सकते। इस प्रकारका प्रतिरोध करानेमें अपने जीवनके शेष वर्ष यदि मैं खर्च कर सकूं तो फिर सन्ततिनिग्रह-जैसी बातका कोई प्रश्न नहीं रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जावें तो वे स्पष्ट रूपसे 'ना' कह दें। यह शक्ति अगर उनमें आ जाय तो फिर कुछ भी करनेकी जरूरत नहीं। यहां हिन्दुस्तानमें तो सन्ततिनिग्रहका प्रश्न ही नहीं रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नहीं। मैंने ही तो अपने निजी सम्पर्कमें आई हुई अनेक स्त्रियोंको यह प्रतिरोधकी कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियां यह प्रतिरोध करना

ही नहीं चाहतीं।....मेरा तो यह विश्वास है कि ९९ प्रतिशत स्त्रियां विना किसी कटुताके अपने प्रेमसे ही पतियोंसे यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप वलात्कार न करें। यह चीज़ असलमें उन्हें सिखाई नहीं गई, न माता-पिताने ही सिखाई, न समाज-सुधारकोंने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं कि जिन्होंने अपने दामादसे यह वात की है, और कुछ अच्छे पति भी देखनेमें आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्रीकी रक्षा की है। मेरी तो सौ वातकी एक वात है कि स्त्रियोंको प्रतिरोधका जो जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्वाध रीतिसे उपयोग करना चाहिए।"

मगर यह वात श्रीमती सेंगरको वेहूदी-सी मालूम हुई। गांधीजीके आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपने लेखमें वे कहती हैं कि इस सारी वातसे गांधीजीका अज्ञान ही प्रकट होता है, क्योंकि स्त्रियोंमें इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नहीं। आज स्त्रियां यह प्रतिरोध नहीं करतीं, यह तो गांधी जी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारकका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियोंको इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसाकी दावाग्नि महात्मा ईसाके ज़मानेमें भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेम का, अहिंसाका। उस उपदेशका पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसाको मानव-समाजका ज्ञान न था।

श्रीमती सेंगर वम्बईकी चालियोंमें कुछ स्त्रियोंसे मिलकर आई थीं, और कहती थीं कि उन स्त्रियोंके साथ वात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि उन स्त्रियोंको यदि सन्तति-निग्रहके साधन प्राप्त हो जायं तो उन्हें वड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहां किस चालीमें गई थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गांधीजीने तो उनसे यह कहा कि 'हिन्दुस्तानके गांवोंमें आप जायं तो आपके सन्तति-निग्रहके इन उपायोंकी वे लोग वात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनीगिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको आप भले ही वहका सकें; पर इससे आप यह न मान लें कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंकी ऐसी ही मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेंगरको ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोधसे तो

गार्हस्थ्य जीवनमें कलह बढ़ेगा, स्त्रियां अप्रिय हो जायंगी, पति-पत्नीके विवाहित जीवनकी सुगन्ध और सुन्दरता नष्ट हो जायगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोधसे यह सब होगा, यह बात नहीं; पर बिना शरीर-सम्बन्धका विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है, ऐसा वे मानती हैं। इसलिए शरीर-सम्बन्धके विरुद्ध यह विद्रोहकी सलाह ही उनके गले नहीं उतरती। अमेरिकाके कुछ उदाहरण उन्होंने गांधीजीके आगे रखे और बतलाया कि "देखिए, इन पति-पत्नियोंका जीवन अलग-अलग रहनेसे कण्टकमय हो गया था; पर उन्होंने सन्तति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवनका आनन्द भी उठा सके और उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गांधीजीने कहा, "मैं आपको पचासों उदाहरण दूसरे प्रकारके दे सकता हूं। शुद्ध संयमी जीवनसे कभी दुःखकी उत्पत्ति नहीं हुई; किन्तु आत्म-संयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखने वाला व्यक्ति अपने जीवनमात्रको जबतक संयत नहीं करता तबतक उसमें वह सफल हो ही नहीं सकता। मेरा तो यह अटल विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये हैं वे तो संयम-हीन, बाह्य त्याग करके अन्तरसे विषयका सेवन करने वालोंके उदाहरण हैं। उन्हें यदि मैं सन्तति-निग्रहके उपायोंकी सिफारिश करूं तो उनका जीवन तो और भी गन्दा हो जाय।

कुंवारे स्त्री-पुरुषोंके लिए तो यह साधन नरकका द्वार खोल देंगे। इस विषयमें गांधीजीको शंका ही नहीं थी। उन्होंने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगरकी चर्चाकी बातचीतसे यह जान पड़ा कि वे कुंवारे पुरुषोंके लिए इन उपायोंकी सिफारिश नहीं कर रही हैं। उन्होंने तो इतना पूछा कि "विवाहितोंके लिए भी क्या आप इन साधनोंकी अनुमति नहीं देते?" गांधीजीने कहा, "नहीं, विवाहितोंका भी यह साधन सत्यानाश करेंगे।" श्रीमती सेंगरने अपने लेखमें जो दलील इसके विरुद्ध रखी है, वह दलील उन्होंने बातचीतमें नहीं दी थी। वे लिखती हैं—"यदि सन्तति-निग्रहके साधनसे ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधानके बादके नौ मासमें भी अतिशय विषय और व्यभिचारके लिए क्या गुंजाइश नहीं रहती?" दलीलकी खातिर तो यह

दलील की जा सकती है; पर मालूम होता है कि श्रीमती सेंगरने इस बातका विचार नहीं किया कि स्त्री-जातिके लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयान्ध स्त्रीको छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पतिके भी विषय-वासनाके वश होती है?"

मगर बात असलमें यह थी कि श्रीमती सेंगर और गांधीजीकी मनोवृत्तियोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर था। बातचीतमें विषयेच्छा और प्रेमकी चर्चा चली। गांधीजीने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। श्रीमती सेंगरने भी यही बात कही। गांधीजीने अपने अनुभवका प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मनको चाहे जितना धोखा दे; पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। काम-रहित प्रेम मनुष्यको ऊंचा उठाता है, और काम-वासना वाला सम्बन्ध मनुष्यको नीचे गिराता है।" गांधीजीने सन्तानोत्पत्तिके लिए किये हुए धर्म्य सम्बन्धका अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टान्त देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाहके लिए हम जो कुछ खाते हैं, वह आहार नहीं, अस्वाद नहीं; किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझानेके लिए नहीं खाता-पीता; किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपताके वश होकर ही इन चीजोंको खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते हैं तब उस सम्बन्धको प्रेम-सम्बन्ध कहते हैं, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना जब वह इकट्ठे होते हैं तो वह प्रेम नहीं, भोग है।"

श्रीमती सेंगरने कहा, "यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नहीं।"

गांधीजी—"आपको यह क्यों स्वीकार्य हो? आप तो सन्तानेच्छारहित सम्बन्धको आत्माकी भूख मानती हैं, इसलिए मेरी बात क्यों आपके गले उतरे?"

श्रीमती सेंगर—"हां, मैं उसे आत्माकी भूख मानती हूं। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय? तृप्तिके परिणाम-स्वरूप सन्तान हो या न हो, यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छाके ही उत्पन्न होते हैं और शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए तो कौन दम्पति इकट्ठे होते

होंगे ? यदि शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए ही इकट्ठे हों तो पति-पत्नीको जीवनमें तीन-चार बार ही विषयेच्छाको तृप्त करके सन्तोष मानना पड़े। और यह तो ठीक बात नहीं कि सन्तानेच्छासे जो सम्बन्ध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और सन्तानेच्छा-रहित सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है।"

गांधीजी—"मैं यह अनुभवकी बात कहता हूं कि मैंने अमुक सन्तानें होनेके बाद अपने विवाहित जीवनमें शरीर-सम्बन्ध बन्द कर दिया। सन्तानेच्छारहित सभी सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है, ऐसा आप कहना चाहें तो मैं यह क़बूल कर सकता हूं। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मैं जब-जब शरीर-सम्बन्ध करता था, तब-तब हमारे जीवनमें सुख एवं शान्ति और विशुद्ध आनन्द नहीं होता था। एक आकर्षण था सही; किन्तु ज्यों-ज्यों हमारे जीवनमें—मेरेमें—संयम बढ़ता गया, त्यों-त्यों हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जबतक विषयेच्छा थी, तबतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट की कि तुरन्त सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेमका साम्राज्य जमा।" गांधीजीने अपने जीवनके एक अन्य आकर्षणकी भी बात की। उस आकर्षणसे ईश्वरने उन्हें किस तरह बचाया, यह भी उन्होंने बतलाया, पर ये तमाम अनुभवकी बातें श्रीमती सेंगरको अप्रस्तुत मालूम हुईं। शायद न मानने योग्य मालूम हुई हों तो कोई अचरज नहीं, क्योंकि अपने लेखमें वे कहती हैं कि "कांग्रेसके मुट्ठी-भर आदर्शवादी कार्यकर्त्ता अपनी विषयेच्छाको दबाकर सेवाशक्तिमें भले ही परिणत कर सके हों; पर उन इने-गिने व्यक्तियोंको छोड़कर उन्हें तो हम लोगोंकी बातें करनी थीं।" पर जहां तक मेरा खयाल है, गांधीजीने तो कांग्रेस या कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंका सारी बातचीतमें कोई हवाला ही नहीं दिया था; पर श्रीमती सेंगर यह भूल जाती हैं कि तमाम नैतिक उन्नति "मुट्ठी-भर आदर्शवादियों" के आचरणकी बदौलत ही हुई है। सच बात तो यह है कि गांधीजीने बतौर स्वप्न-द्रष्टा-के बात नहीं की थी। गांधीजी खुद एक नीति-शिक्षक हैं और श्रीमती सेंगर भी नीति-शिक्षिका हैं; वे स्वयं एक समाज-सेवक हैं और श्रीमती सेंगर भी समाज-सेविका हैं, यह मानकर ही सारा संवाद चला था, और

यह होते हुए भी व्यवहारकी भूमिका पर खड़े होकर ही उन्होंने उनसे बातें की थीं। उन्होंने कहा, "नहीं, बतौर नीति-रक्षकके मेरा और आपका कर्त्तव्य तो यह है कि इस सन्तति-निग्रहको छोड़कर अन्य उपायोंका आयोजन करें। जीवनमें कठिन पहेलियां तो आयंगी ही; पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधनसे हल नहीं की जा सकतीं। इन सन्तति-निग्रहके साधनोंको अधर्म्य समझकर आप चलेंगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जानेके बाद मां-बापको अपनी विषय-वासना शान्त कर देनी चाहिए, इस प्रकारकी शिक्षा हम क्यों न दें, इस तरहका क़ानून हम क्यों न बनावें? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जानेके बाद भोग-वासनाको अब क्यों न रोका जाय? बच्चे मर जायं और बादको ज़रूरत हो तो सन्तान उत्पन्न करनेकी ग़रज़से पति-पत्नी फिरसे इकट्ठे हो सकते हैं। आप ऐसा करेंगी तो विवाह-बन्धनको आप ऊंचे दरजे पर ले जायंगी। सन्तति-निग्रहकी सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आये तो मैं उससे यही कहूंगा कि 'यह सलाह, बहन, तुम्हें मेरे पास मिलनेकी नहीं; और किसीके पास जाओ।' पर आप तो सन्तति-निग्रह-के धर्मका आज प्रचार कर रही हैं। मैं आपसे यह कहूंगा कि इससे आप लोगोंको नरकमें ले जाकर पटकेंगी, क्योंकि उनसे आप यह तो कहेंगी नहीं कि 'बस, अब इससे आगे नहीं।' इसमें आप कोई मर्यादा तो रख नहीं सकेंगी।"

वर्धामें जो बातचीत हुई उसमें तो श्रीमती सेंगरने इतने अधिक मित्रभावसे, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्तिसे बर्ताव किया कि कुछ पूछिये नहीं। गांधीजीसे उन्होंने कहा था, "पर आप कोई उपाय भी बतलाइए। संयम मैं भी चाहती हूं, संयम मुझे अप्रिय नहीं; पर शक्य संयमका ही पालन हो सकता है न?" सत्य-शोधककी नम्रतासे गांधीजीने कहा, "निर्बल मनुष्योंके लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल हीमें एक मित्र-की भेजी हुई पुस्तकमें देखा है। उसमें यह सलाह दी है कि ऋतुकालके बाद अमुक दिनोंको छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्यको महीनेमें १०-१२ दिन मिल जाते हैं और सन्तानोत्पादनसे वह

बच सकता है। इस उपायमें बाकीके दिन तो संयम पालनेमें ही जायंगे, इसलिए मैं इस उपायको सहन कर सकता हूं।"

पर यह उपाय श्रीमती सेंगरको तो नीरस ही मालूम हुआ होगा; क्योंकि इस उपायका उन्होंने न तो अपने लेखमें ही कहीं उल्लेख किया है, न अपने भाषणोंमें ही। इस उपायकी ही बात करें तो सन्तति-निग्रहके साधन बेचनेवाले भीख मांगने लगें और तीसों दिन जिन्हें भोग-वासना सताती हो, उन बेचारोंकी क्या हालत हो?

फिर श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियोंकी दुःख-भंजक ठहरीं। ऐसे दुखियोंका मोक्ष-साधन सन्तति-निग्रहके सिवा और क्या हो सकता है। मैं यह कटाक्ष नहीं कर रहा हूं। श्रीमती सेंगरने अमेरिकामें सर्वधर्म-परिषद्के आगे जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने सन्तति-निग्रहको मोक्ष-साधनका रूप दिया है। उस भाषणमें उन्होंने न तो संयमकी बात की है; न केवल विवाहित दम्पतियोंकी। वहां तो उन्होंने बात की है उस अमेरिका की—जहां हर साल २० लाख भ्रूण-हत्याएं होती हैं। इतनी बाल हत्याएं रोकनेके लिए सन्तति-निग्रहके साधनोंके सिवा दूसरा उपाय ही क्या!! पर अभी ज़रा और आगे बढ़ें तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओंकी चढ़ाई भारतकी स्त्रियोंके हितार्थ नहीं; किन्तु दूसरे ही हेतुसे हो रही है। अमेरिकाके उस भाषणमें ही उन्होंने स्पष्ट रीतिसे कहा था कि—"जापानकी आबादी कितनी बढ़ रही है! वहां तो जन-वृद्धिकी मात्रा पहले ही बढ़ी-चढ़ी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढ़ती गई तो इन एशियाके राष्ट्रोंका त्रास पृथ्वी कैसे सहन कर सकेगी? राष्ट्रसंघको इनके विरुद्ध कोई ज़बर्दस्त प्रतिबन्ध सहना ही होगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजाके लिए, खानेकी तंगी होनेसे जापानको और भी देशोंकी जरूरत होगी, और भी मण्डियां चाहनी पड़ेंगी, इसीसे वह पवित्र संधियोंको भंग कर रहा है और विश्व-व्यापी युद्धका बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीतिसे पेश आ रहा है, उसे देखते हुए तो जापानका यह उदाहरण चतुराईसे भरा हुआ उदाहरण है; पर श्रीमती सेंगरको तो इस उसका भयंकर

स्वप्न दवा रहा है कि सन्तति-निग्रह न करने वाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजाके लिए खतरनाक हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियोंकी चढ़ाईसे हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायं उतना ही अच्छा।

—महादेव देसाई

: ४ :

श्रीमती सेंगरका पत्र

श्रीमती सेंगरने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है—

"अपने लेख ('विदेशियोंके नये-नये हमले') में मेरे और गांधीजीके बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते हैं कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के अपने लेखमें मैंने उस बातचीतका सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह बात बिलकुल ठीक है। उस लेखमें दरअसल, उसी पर मैं विचार भी करना चाहती थी।

"मुझे यह भी बता देना चाहिए कि उस लेखको छपनेके लिए भेजनेसे पहले मैंने आपकी और गांधीजीकी एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टरको पढ़कर सुना दिया था और जिसे आप 'परदेकी ओटमें दुर्नीति' कहते हैं वह बात उन्होंने ही सुझाई थी। कृपया इस बातका यक़ीन रखें कि जो बहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तानकी आज़ादीके लिए प्रयत्न कर रहे हैं उन सबके प्रति मेरे मनमें अत्यधिक श्रद्धा और सम्मानका ही भाव है। मैंने अभी तक जो-कुछ किया है उस पर आप नज़र डालें तो हिन्दुस्तानमें आज़ादी प्राप्त करनेके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोंकी मदद करनेकी ग़रज़से १९१७ में जो पहला दल अमेरिकामें संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

"एक और बात भी आपके लेखमें ऐसी है जिसमें, मैं समझती हूं, आप ग़लती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह ज़ाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीतमें गांधीजीने (ऋतु-कालके बाद कुछ दिनोंको छोड़कर) ऐसे दिनोंमें समागमके उपायको स्वीकार कर लिया है जिनमें गर्भ रहनेकी सम्भावना प्रायः नहीं होती। मेरे ख़यालमें आप टाइप किये हुए वक्तव्यको देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा,

'यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है ।' हालांकि मैंने और निश्चित बात कहनेका आग्रह किया, लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा । ऐसी हालतमें आपने सार्वजनिक रूपसे जो कथन उनका बताया है, मेरे खयालमें वह आपने ठीक नहीं किया । और अन्तमें आपने प्रचारकोंके 'व्यापार' की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधीजी आपसे सहमत होंगे । वह वाक्य और जिस भावनाका वह सूचक है वह, आप-जैसे व्यक्तिके लायक नहीं है, जिसने कि निःस्वार्थ भावसे जन-सेवाका कार्य किया है ।

"सन्तति-निग्रहके कार्यकर्त्ता जिस बातको मानव-स्वतन्त्रता एवं प्रगतिके लिए मनुष्य-मात्रका मौलिक स्वत्व मानते हैं, उसके लिए निःस्वार्थ भावसे और बिना किसी परिश्रमके उन्होंने संग्राम किया है और अब भी कर रहे हैं । फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारेमें यों ही कोई ऐसी बात कह देना सर्वथा अनुचित, असौजन्यपूर्ण और असत्य है, जो दरअसल बिलकुल बेबुनियाद हो ।"

इसमें जहां तक 'परदेकी ओटमें दुर्भाव' से सम्बन्ध है, मैं प्रसन्नता-से और कृतज्ञता-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूं; लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनकमिज़ाजीके लहजेमें वह लेख लिखा हुआ है, उससे यही भाव टपकता है, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूं कि उनका ऐसा भाव नहीं था ।

दूसरी ग़लतीके बारेमें, श्रीमती सेंगरको यह याद रखना चाहिए कि उन्होंने तो 'बातचीतके सिर्फ़ एक पहलूको ही' लिया है; लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता । मैं नहीं समझता कि यह कहकर कि ऋतु-कालके बाद-के कुछ दिनोंको छोड़कर ऐसे दिनोंमें समागमकी बात गांधीजी सहन कर लेंगे, जिनमें गर्भ रहनेकी सम्भावना प्रायः नहीं होती; क्योंकि इसमें आत्म-संयमकी थोड़ी-बहुत भावना तो है, मैंने उन्हें किसी ऐसी स्थितिमें डाल दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं है । मैं तो सिर्फ़ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधीकी बातको भी, जहां तक सम्भव हो, किस तत्परताके साथ गांधीजी स्वीकार कर लेते हैं । उन्होंने जिस कारण यह कहा कि

'यह बात मुझे इतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है,' वह इस विषयमें बड़ी मुद्देकी बात है; क्योंकि श्रीमती सैंगरके उपाय (कृत्रिम सन्तति-निग्रह) से जहां महीनेके सभी दिनोंमें विषय-भोगमें प्रवृत्त होनेकी छुट्टी मिल जाती है वहां इस विशेष उपायसे किसी हद तक तो आत्म-संयम होता ही है।

'व्यापार' वाली बात, मैं समझता हूं, श्रीमती सैंगरको बहुत बुरी लगी है; लेकिन खुद श्रीमती सैंगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था; क्योंकि मुझे मालूम है, उन्होंने अपने उद्देश्यके लिए बड़ी बहादुरी और निस्स्वार्थ भावसे लड़ाई लड़ी है, मगर यह बात बिलकुल गलत भी नहीं है कि सन्तति-निग्रहके लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा सन्तति-निग्रहके प्रायः सभी उत्साही समर्थकोंके यहां बिक्रीके लिए इस सम्बन्धका जो आकर्षक साहित्य या औजार आदि होते हैं वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे उस उद्देश्यको तो हानि ही पहुंचती है जिसके लिए कि श्रीमती सैंगर निस्स्वार्थ भावसे इतना उद्योग कर रही हैं।

—महादेव देसाई

: ५ :

स्त्रियोंको स्वर्गकी देवियां न बनाइए

गांधीजी उस विषय पर आये, जिस विषय पर कि विषय-समितिमें उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। वायु-मण्डल अनुकूल नहीं था, इसलिए उस विषय पर वे कोई प्रस्ताव नहीं ले सके। 'ज्योति-संघ' नामक आन्दोलनकी संचालिका बहनोंने उन्हें एक पत्र लिखा था। इसीको लेकर उन्होंने कुछ कहा। इस पत्रके साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमें उन्होंने उस वृत्तिकी निन्दा की, जो आज-कल स्त्रियोंका चित्रण करनेके विषयमें वर्तमान साहित्यमें चल पड़ी है। गांधीजीको लगा कि उनकी शिकायतमें काफ़ी बल है और उन्होंने कहा, "इस आरोपमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकलके लेखक स्त्रियोंका बिलकुल झूठा चित्रण करते हैं। जिस अनुचित भावुकताके साथ स्त्रियोंका चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर-सौन्दर्यका जैसा भद्दा और असभ्यतापूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देखकर इन कितनी बहनोंको घृणा होने लग गई है। क्या उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही में है? पुरुषोंकी लालसा-भरी विकारी आंखोंकी तृप्ति करनेकी क्षमतामें ही है? इस पत्रकी लेखिकाएं पूछती हैं और उनका पूछना बिलकुल न्याय्य है कि क्यों हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानों हम कमज़ोर और दब्बू औरतें हों, जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घरके तमाम हलके-से-हलके काम करती रहें और जिनके एकमात्र देवता उनके पति हैं! जैसी वे हैं वैसी ही उन्हें क्यों नहीं बताया जाता? वे कहती हैं, 'न तो हम स्वर्गकी अप्सराएं हैं, न गुड़िया हैं, और न विकार और दुर्बलताओंकी गठरी ही हैं।' पुरुषोंकी

---

[1]गुजरात साहित्य परिषद्की कार्यवाहीका अंश

भांति हम भी तो मानव-प्राणी ही हैं। जैसे वे हैं वैसी ही हम भी हैं। हममें भी आज़ादीकी वही आग है। मेरा दावा है कि उन्हें और उनके दिलको मैं काफ़ी अच्छी तरह जानता हूं। दक्षिण अफ्रिकामें एक समय मेरे आस-पास स्त्रियां-ही-स्त्रियां थीं। मर्द सब उनके जेलोंमें चले गये थे। आश्रममें कोई ६० स्त्रियां थीं। और मैं उन सब लड़कियों और स्त्रियोंका पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहां तक कि अन्तमें वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गई।

मुझसे यह भी कहा गया है कि हमारे साहित्यमें स्त्रियोंको प्रायशः देवताके सदृश वर्णन किया गया है। मेरी रायमें इस तरहका चित्रण भी बिलकुल ग़लत है। एक सीधी-सी कसौटी मैं आपके सामने रखता हूं। उनके विषयमें लिखते समय आप उनकी किस रूपमें कल्पना करते हैं? आपको मेरी यह सूचना है कि आप जब कागज़ पर क़लम चलाना शुरू करें, उससे पहले यह खयाल कर लें कि स्त्रीजाति आपकी माता है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आकाशसे जिस तरह इस प्यासी धरती पर सुन्दर शुद्ध जलकी वर्षा होती है, उसी तरह आपकी लेखनीसे भी शुद्ध से-शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिए, एक स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता थी। कितने ही लेखक स्त्रियोंकी आध्यात्मिक प्यासको शान्त करनेके बजाय उनके विकारोंको जाग्रत करते हैं। नतीजा यह होता है कि बेचारी कितनी ही भोली स्त्रियां यही सोचनेमें अपना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासोंमें चित्रित स्त्रियोंके वर्णनके मुक़ाबलेमें वे किस तरह अपनेको सजा और बना सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्यमें उनका नख-शिख वर्णन क्या अनिवार्य है? क्या आपको उपनिषदों, कुरान और बाइबिलमें ऐसी चीज़ें मिलती हैं? फिर भी क्या आपको पता नहीं कि बाइबिलको अगर निकाल दें तो अंग्रेज़ी भाषाका भण्डार सूना हो जायगा। उसके बारेमें कहा जाता है कि उसमें तीन हिस्से बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर। कुरानके अभावमें अरबीको सारी दुनिया भूल जायगी और तुलसीदासके

अभावमें ज़रा हिन्दीकी कल्पना तो कीजिए। आजकलके साहित्यमें स्त्रियोंके विषयमें जो-कुछ मिलता है, ऐसी बातें आपको तुलसीकृत रामायणमें मिलती हैं ?"

गांधीजीकी अन्य पुस्तकें

१. आत्मकथा
२. प्रार्थना-प्रवचन—भाग १
३. प्रार्थना-प्रवचन—भाग २
४. गीता माता
५. पंद्रह अगस्त के बाद
६. धर्मनीति
७. दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह
८. मेरे समकालीन
९. अनीतिकी राहपर
१०. हिन्द स्वराज्य
११. अनासक्तियोग
१२. गीता-बोध
१३. मंगलप्रभात
१४. सर्वोदय
१५. ग्राम-सेवा
१६. नीति-धर्म
१७. आश्रमवासियोंसे
१८. बापूकी सीख
१९. गांधी-शिक्षा—(तीन भाग)
२०. सत्यवीर सुकरात
२१. आत्म संयम